

UNIVERSAL
LIBRARY

OU 180880

UNIVERSAL
LIBRARY

H83/C49De G.H.686 |

चटोपाध्याय, शरच्चन्द्र |

देहाती समाज |

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83/C 49 De Accession No. G. H 686

Author चटोपाध्याय, शरच्चन्द्र ।

Title देशर्क संग्रह ।

This book should be returned on or before the date
last marked below.

H83/C49De G.H.686

चट्टोपाध्याय, शरच्चन्द्र ।
देहाली समाज ।

सरस्वती-सिरीज़ नं० ५६

देहाती समाज

शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय



प्रकाशक
इंडियन प्रेस लिमिटेड
प्रयाग

सरस्वती-सिरीज

स्थायी परामर्शदाता—डा० भगवानदास, पण्डित भ्रमरनाथभाषा, परमानन्द, डा० प्राणनाथ विद्यालङ्कार, श्री सत्यदेव विद्यालङ्कार, पं० द्वारिका-प्रसाद मिश्र, संत निहालसिंह, पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे, बाबू संपूर्णानन्द, श्री बाबूराव विष्णुपराङ्कर, पण्डित केदारनाथ भट्ट, व्याहार राजेन्द्रसिंह, श्री पदुमलाल पुत्रालाल बख्शी, श्री जैनेन्द्र कुमार, बाबू वृन्दावनलाल वर्मा, सेठ गोविन्ददास, पण्डित क्षेत्रेश चटर्जी, डा० ईश्वरीप्रसाद, डा० रमाशंकर त्रिपाठी, डा० परमात्माशरण, डा० बेनीप्रसाद, डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, पण्डित रामनारायण मिश्र, श्री संतराम, पण्डित रामचन्द्र शर्मा, श्री महेश-प्रसाद मौलवी फ़ाजिल, श्री रायकृष्णदास, बाबू गोपालराम गहमरी, श्री उपेन्द्र-नाथ “अशक”, डा० ताराचंद, श्री चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार, डा० गोरखप्रसाद, डा० सत्यप्रकाश, श्री अनुकूलचन्द्र मुकर्जी, रायसाहब पण्डित श्रीनारा-यण चतुर्वेदी, रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास, पण्डित सुमित्रानन्दन पंत, पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी ‘निराला’, पं० नन्ददुलारे वाजपेयी, पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पण्डित मोहनलाल महतो, श्रीमती महादेवी वर्मा, पण्डित अयोध्या-सिंह उपाध्याय ‘हरिऔध’, डा० पीताम्बरदत्त बड़वाल, डा० धीरेन्द्र वर्मा, बाबू रामचन्द्र टंडन, पण्डित केशवप्रसाद मिश्र, बाबू कालिदास कपूर, इत्यादि, इत्यादि ।

विश्व उपन्यास

देहाती समाज

‘शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय’ के इसी नाम के बँगला उपन्यास का हिन्दी रूपान्तर ।

शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

बेनी घोषाल ने मुखर्जी-परिवार के घर के भीतरी आँगन में पैर रखते ही सामने एक प्रौढ़ा स्त्री को देखकर पूछा—मौसी, खूब मिल गई। रमा कहाँ है ?

मौसी पूजा-पाठ कर रही थीं। उन्होंने इशारे से रसोई-घर दिखला दिया। बेनी ने उठ आकर रसोई की कोठरी के चौखट के बाहर खड़े होकर कहा—तो फिर रमा, तुमने क्या तय किया ?

जलते हुए चूल्हे पर से बोल रही बड़ाही नीचे रखकर रमा ने सिर उठाकर देखा, और कहा—किस बात को बड़े दादा ?

बेनी ने कहा—तारिणी चाचा की तेरहीं के बारे में बहन ! रमेश तो कल आ गया है। बाप की तेरहीं का आदर तो, जान पड़ता है, बड़ी धूमधाम से ही करेगा। जाओगी क्या ?

रमा ने विस्मय से आँखें फैलाकर कहा—मैं जाऊँगी तारिणी घोषाल के घर ?

बेनी ने कुछ लज्जित होकर कहा—सो तो मैं जानता हूँ दीदी ! और चाहे जो जाय, किन्तु तुममें से कोई वहाँ कदम न रखेगा। किन्तु सुनता हूँ कि छोकरा हर एक के घर खुद जाकर प्रार्थना करेगा। बदज़ाती की चालों में वह अपने बाप से भी बढ़कर है। जो तुम्हारे पास भी आया, तो तुम क्या करागी ? क्या कहेगी ?

रमा ने क्रोध के साथ जवाब दिया—मैं कुछ भी नहीं करूँ या कहूँगी। बाहर दरवाज़े पर ही दरबान उसका उत्तर देगा।

पूजा कर रही मौसी के कानों में इस अत्यन्त रुचिकर दलबन्दी की चर्चा की भनक पड़ते ही पूजा-पाठ छोड़-छोड़कर वे उठ आईं। बहन की लड़की की बात पूरी भी न हो पाई थी कि बहुत गरम खील की तरह

छिटककर वे कह उठीं—दरबान क्यों ? मैं क्या कहना नहीं जानती ? पाजी छोकरे को ऐसी बातें सुनाऊँगी कि बच्चा इस जन्म में फिर कभी मुखर्जी-परिवार के घर की ओर मुँह नहीं करेंगे ! तारिणी घोषाल का लड़का आवेगा हमारे घर में न्योता देने ! मैं कुछ भी नहीं भूली हूँ बेनी-माधो ! तारिणी ने अपने इसी लड़के के साथ रमा का ब्याह करना चाहा था । उस समय मेरा यतीन नहीं पैदा हुआ था । उसने सोचा था कि यदु मुखर्जी की सारी जायदाद और दौलत, यह ब्याह कर पाने से, उसी की मुट्ठी में हो जायगी । समझे कि नहीं भैया बेनी ? जब यह बात नहीं हुई, तब इस भैरव ओम्हा से न जाने क्या पुरहचरन करवाकर मेरी बेटी के भाग्य में ऐसी आग लगा दी कि छः महीने नहीं बीते, बेचारी के हाथ की चूड़ियाँ उतर गईं और माथे का सेंदुर पुँछ गया । छोटी जाति का ब्राह्मण होकर चाहता था यदु मुखर्जी जैसे कुलीन की लड़की से ब्याह करना । वैसी ही हरामज़ादे की मौत भी हुई, बेटे के हाथ की आग तक नहीं नसीब हुई । ऐसे छुटभैये के मुँह में आग !

इतना कहकर मौसी मानो कुश्ती लड़ चुकने पर हाँफने लगीं । बार-बार छोटी जाति या छुटभैया कहने से बेनी का चेहरा उतर गया; क्योंकि यह प्रसङ्ग उसी के भाई और चाचा का था—तारिणी घोषाल उसका चाचा था और रमेश भाई है ।

बुद्धिमती रमा ने इसे लक्ष्य करके तिरस्कार के स्वर में कहा—मौसी, तुम किसी की जाति पर हमला क्यों कर बैठती हो ? जाति की उँचाई-निचाई तो किसी के हाथ की बात नहीं है । जो जिस जाति में पैदा हुआ है, उसे वही अच्छी है ।

बेनी ने लज्जित भाव से मुसकुराकर कहा—नहीं रमा, मौसी ने ठीक ही कहा । तुम कितने बड़े कुलीन घर की लड़की हो, तुम्हें हम ब्याह कर बहू कहीं बना सकते हैं बहन ! छोटे चाचा का यह बात ज़बान पर लाना ही बेजा था । और जादू-टोने की बात जो कहती हो, सो वह भी सच्ची है ! छोटे चाचा और इस हरामज़ादे भैरव ओम्हा के लिए संसार

भर में कोई काम असाध्य नहीं है। ये सब कुछ कर सकते हैं। यही भैरव तो आजकल रमेश का सिरधरा है।

मौसी ने कहा—यह तो जानी हुई बात है बेनी भैया ! लौंडा दस-बारह बरस तो बाहर ही रहा, गाँव में आया ही नहीं। भला अब तक वह कहाँ था ?

बेनी—यह मैं किस तरह जान सकता हूँ मौसी ! छोटे चाचा के साथ जैसे तुम्हारी अनबन है, वैसे ही हमारी भी। हाँ, सुनता हूँ कि अब तक बम्बई की तरफ़ था। कोई कहता है, डाकटरी पास कर आया है; कोई बतलाता है, वकील हो आया है; किसी का कहना है कि यह सब धोखा है, छोकरा महा छिछोरा और परले सिरे का पियकड़ है। जिस वक्ता घर में पहुँचा था, उस वक्ता दोनों आँखें गुलदुपहरी के फूलों की तरह लाल हो रही थीं। पैर भी शायद लड़खड़ाते हुए पड़ते थे।

मौसी—हूँ ! तब तो उसे इस घर में घुसने देना ठीक नहीं।

बेनी ने उत्साह के आवेश में सिर को एक बार ज़ोर से झटककर कहा—ठीक तो नहीं है ही। रमा, तुमको रमेश की याद है ?

अपने फूटे भाग्य का प्रसङ्ग छिड़ जाने से रमा मन में लज्जित हो रही थी। उसने लज्जा-मिश्रित मृदु मुसकान के साथ कहा—याद क्यों नहीं है ? वह तो मुझसे कुछ बहुत दिनों का बड़ा है नहीं। इसके सिवा शीतलाजी के मण्डपवाली पाठशाला में तो हम दोनों एक ही साथ पढ़ते-लिखते रहे हैं। किन्तु उसकी माँ जब मरी थीं तब की मुझे अच्छी तरह याद है। वे चाची मुझे बहुत प्यार करती थीं।

मौसी एक बार फिर नाच सी उठीं। बोलीं—उसके प्यार में लगे आग ! वह प्यार दिखावटी था, अपना मतलब सिद्ध करने को था। उनकी साजिश ही यह थी कि किसी तरह तुझे फँसाकर अपने हाथ में कर लिया जाय।

बेनी ने, बड़े विज्ञ पुरुष की तरह, मौसी का समर्थन करते हुए कहा—इसमें सन्देह ही क्या है मौसी ! छोटी चाची भी तो—

बात पूरी होने न पाई, बीच में ही रमा अप्रसन्न होकर मौसी से कह उठी—उन पुरानी बातों के छेड़ने से क्या लाभ ? गड़े मुर्दे उखाड़ना बेकार है ।

रमेश के बाप से रमा का कितना ही भगड़ा क्यों न हो, उसकी माता के सम्बन्ध में रमा के हृदय में कहीं पर कुछ प्रच्छन्न वेदना सी थी । इतने दिन गुज़र जाने पर भी वह बिलकुल मिटी नहीं थी ।

बेनी ने फ़ौरन् रमा की हाँ में हाँ मिलाकर कह दिया—यह तो ठीक है । छोटी चाची भले घराने की भले आदमी की बेटी थीं, और खुद भी बहुत भली थीं । आज भी उनकी चर्चा चलने पर मेरी माताजी रो देती हैं ।

किस बात से क्या बात निकल पड़ी, यह देखकर बेनी ने फ़ौरन् इस प्रसङ्ग को दबा देने की कोशिश की । उसने बात टालने के लिए कहा—तो फिर यही पक्का रहा न दीदी ? इसमें कुछ रदबदल तो न होगा ?

रमा हँस दी । बोली—बड़े दादा, बापू कहते थे कि आग, कर्ज़ और दुश्मन, इन तीनों को बिलकुल मिटा देना चाहिए, इनकी ज़रा सी भी जड़ न छोड़नी चाहिए । मुझे उपदेश देते रहते थे कि बेटी, याद रख, आग की एक चिनगारी भी न छोड़ना, कर्ज़ की एक पाई भी बाक़ी न रहने देना और शत्रु को नेस्तनाबूद करके ही कल करना । तारिणी घोषाल ने ज़िन्दगी भर हमें कुछ कम नहीं सताया, बापू तक को जेलख़ाने में भेजने का जाल फैलाया था । मैं कुछ भी नहीं भूली हूँ बड़े दादा । जब तक जीती रहूँगी, तब तक नहीं भूल सकती । रमेश उसी पुरतैनी दुश्मन का लड़का है न ? इसके अलावा मेरा तो किसी तरह जाना हो ही नहीं सकता । बापू हम दोनों भाई-बहनों को जायदाद-ज़मीन वग़ैरह सब बाँटकर दे गये ज़रूर हैं, किन्तु सारी जायदाद की देख-भाल और रखवाली करने का भार तो पूरा-पूरा मेरे ही सिर पर है । हम तो जायँगे ही नहीं, हमारे साथ जिनका तनिक सा भी सम्पर्क है, उन तक को मैं न जाने दूँगी ।

फिर तनिक सोचकर बोली—अच्छा बड़े दादा, तुम ऐसा नहीं कर सकते कि कोई भी ब्राह्मण उनके घर जाने को राज़ी न हो ?

बेनी ज़रा और पास आकर, आवाज़ और भी धीमी करके, कहने लगा—वही तो कर रहा हूँ बहन ! तू मेरी मदद पर बनी रह, फिर किसी बात की चिन्ता मैं नहीं करता । रमेश को इस कुँयापुर गाँव से अगर भगा न दिया तो मेरा नाम बेनी घोषाल नहीं । उसके बाद रह जायगा यह भैरव ओम्हा और मैं । मेरा उसका सामना होगा । अब तो तारिणी घोषाल रह नहीं गये । देखता हूँ, साले को कौन बचाता या मदद देता है !

रमा बोली—उसकी रक्षा करनेवाला रमेश घोषाल है । देखो बड़े दादा, यह मैं आज कहे रखती हूँ कि दुश्मनी करने में, कसर निकालने में, चाल चलने में बेटा भी कुछ कम नहीं निकलेगा, कोई बात उठा न रखेगा ।

बेनी और भी आगे खिसक गया, फिर एक बार इधर-उधर देख करके चौखट के ऊपर ऊँचा होकर बैठ गया । अब स्वर को और भी सूक्ष्म करके कहने लगा—देखो रमा, बाँस को भुंकाना चाहती हो तो उसका यही ठीक मौक़ा है । पक जाने पर फिर कुछ न होगा, यह मैं निश्चित रूप से कहे देता हूँ । जायदाद-ज़मीन वग़ैरह की हिफ़ाज़त कैसे करनी होती है, इसकी अभी तक उसे शिक्षा नहीं मिली है । इसी बीच में यदि शत्रु को निर्बल न किया जा सका, तो भविष्य में फिर एकदम ही इसकी आशा नहीं की जा सकेगी । हमें यही बात दिन-रात याद रखनी होगी कि रमेश तारिणी घोषाल का ही लड़का है, और कोई नहीं ।

रमा—यह मैं समझती हूँ बड़े दादा !

बेनी—तू समझती क्या नहीं है बहन ! भगवान् ने तुझे मर्द बनाते-बनाते औरत का चोला दे दिया है, और क्या । बात की तह तक पैठने में तो तेरे मुक़ाबले में एक पक्का ज़मींदार भी नहीं टिक सकेगा, यह बात हम लोग अक्सर आपस में कहा करते हैं । अच्छा, कल फिर आऊँगा, आज चलता हूँ, देर हुई ।

बेनी उठ खड़ा हुआ । रमा इस अपनी बड़ाई से अत्यन्त प्रसन्न हो उठी । उसने खड़े होकर विनीत भाव से कुछ किसी प्रकार का प्रति-वाद करना चाहा कि अकस्मात् कलेजा धक से हो उठा; क्योंकि आँगन

“मैं जाता हूँ” कहकर बेनी तो व्यस्त भाव से ग्विमक गया। रमा ने कोठरी के भीतर से कहा—क्या बेकार बक-बक कर रहा हो मौसी ? तुम अपने काम से जाओ।

मौसी ने समझा कि बहन की लड़की के लिये इशारों को उन्होंने समझ लिया है। इसी से स्वर में और भी थोड़ा सा विष घोलकर बोलीं—ले रमा बक मत। जो काम करना ही होगा उसमें तुम जवानों की तरह हम बूढ़े आदमी आँखों का सील तोड़ते नहीं हिचकते। बेनी के इस तरह डरकर भागने की क्या ज़रूरत थी ? इससे तो खुलासा यह कह जाना ही अच्छा था कि हम भैया, न तो तुम्हारे गुमाश्ते ही हैं, और न खास ताल्लुके की रियाया ही, जो तुम्हारे कामकाज के घर में पानी भरने या मैदा सानने जायेंगे। सच तो यह है कि तारिणी के मरने से गाँव भर के लोगों की बेचैनी दूर हो गई, यह बात कह देने का बोझ हम लोगों पर न डालकर आप ही इनके मुँह पर अगर बेनी कह डालता तो भला कुछ मर्दानगी की बानगी भी देखने में आती।

रमेश उस समय भी निश्चल निर्जीव की तरह खड़ा था। ये सब टुच्चों की सी बातें सुनने का खयाल तो सपने में भूलकर भा उसे नशा हो सकता था।

भीतर से रसोईघर के किवाड़े की ज़ब्ज़ीर खट-खटाई जाने लगी; किन्तु उधर किसी ने ध्यान नहीं दिया। बोलने का शक्त से शून्य और अत्यन्त मलिन हो गये रमेश के सूखे मुख पर नज़र डालकर मौसी फिर बोलीं—खैर, वह कुछ भी हो, मैं दरवान या नौकर-चाकर के हाथों एक ब्राह्मण के बेटे की इज़्ज़त उतरवाना नहीं चाहती। ज़रा होश सँभालकर देख-भालकर काम किया करो भैया, जाओ। कुछ दूध-पीते बच्चे तो हो नहीं, जो भलेमानस के घर के भीतर घुसकर मनमाना करते फिरोगे ! मेरी रमा तुम्हारे घर में कभी पाँव धोने को भी नहीं जा सकेगी—यह मैंने तुमसे साफ़-साफ़ कह दिया।

एकाएक रमेश को इस तरह होश हुआ जैसे कोई सोते से जाग पड़े। उसी दम उसके विशाल वक्षस्थल के भीतर से ऐसी गहरी साँस निकल

पड़ी कि उसके शब्द से वह खुद भी चौंक उठा। भीतर किवाड़ों की ओट में खड़ी हुई रमा ने भी सिर उठाकर उसकी ओर देखा। रमेश एक बार शायद कुछ हिचका, उसके बाद ही रसोईघर की तरफ लक्ष्य करके कह उठा—जब जाना हो ही नहीं सकता तब कोई चारा नहीं ! किन्तु मुझे ये सब बातें मालूम न थीं। बिना जाने जो कुछ उपद्रव किये जा रहा हूँ, उसके लिए माफ़ करना रानी !

इतना कहने के बाद ही रमेश धीरे-धीरे वहाँ से चला गया। कोठरी के भीतर से ज़रा सी भी आवाज़ नहीं सुनाई पड़ी। रमेश ने जिससे क्षमा-भिन्ना माँगी, वह आड़ से चुपचाप उसके मुख को ताक रही थी, यह उसे मालूम ही न हो सका।

रमेश के जाते ही बेनी तुरन्त लौट आया और रमा की कोठरी के सामने खड़ा हो गया। वह कहीं गया नहीं था, बाहर छिपा हुआ रमेश के जाने की बाट जोह रहा था। मौसी से चार आँखें ढाँते ही उसका चेहरा आह्लाद और हँसी से उद्भासित हो उठा। उसने पास आकर कहा—मौसी, तुमने उसे खूब चोखी-चोखी सुना दीं। इस तरह हम लोगों से तो कभी न कहते बनता। यह क्या नौकर या दरबान के मान का काम था रमा ? मैं तो आड़ में खड़ा-खड़ा देखता रहा था कि नहीं, छोकरे के चेहरे पर बरसाती आकाश की तरह आँधरे की छाया छा रही थी। यही तो ठीक था।

मौसी ने कुण्ठित अभिमान के स्वर में कहा—ठीक तो हुआ, यह मैं जानती हूँ; किन्तु हम दोनों औरतों पर इसका भार न रखकर जो तुम अपने मुँह से कह देते तो शायद इससे भी अधिक अच्छा होता ! और तुम आप नहीं कह सकते थे, तो मैंने जो कुछ कहा-सुना उसे इस तरह चोर के समान लुक-छिपकर सुन लेने की मुस्तैदी भी नहीं दिखलानी थी। इस तरह टल जाना वाजिब न था तुमको।

मौसी की बातों के तीखेपन से बेनी के मुँह की हँसी गायब हो गई। उसे न सूझ पड़ा कि वह इस अभियोग की क्या सफ़ाई दे। किन्तु देर

तक सोचना नहीं पड़ा। एकाएक रमा ने भीतर से इसका जवाब दे दिया। अभी तक उसने एक भी शब्द अपने मुँह से नहीं निकाला था। उसने कहा—अच्छा हुआ कि तुम्हीं ने खुद कह दिया। कोई कितनी ही कड़ी बात क्यों न कहता, वह तुम्हारी तरह ज़बान से विष की वर्षा न कर सकता।

रमा की बातें सुनकर मौसी और बेनी, दोनों को बड़ा अचरज हुआ। मौसी ने रसाईघर की ओर मुँह फेरकर कहा—क्या कहा तूने ?

“कुछ भी नहीं। पूजा-पाठ करने बैठकर तो सात बार उठ चुकीं। जाओ न, उसे समाप्त कर लो। आज क्या खाने-पीने को कुछ नहीं करोगी ?” यों कहते-कहते रमा खुद भी बाहर निकल आई, और किसी से बिना कुछ कहे-सुने बरामदा लाँघकर दूसरी तरफ़ की कोठरी में चली गई।

बेनी का मुँह सूख गया था। उसने चुपके-चुपके पूछा—बात क्या है मौसी ? मौसी बोलीं—क्या जानूँ मैया ! वह तो राजरानी ठहरी; उसके मिज़ाज का हाल जानना क्या हम लौंडी-बाँदियों के मान की बात है ?

क्रोध और क्षोभ के मारे मुँह फुला करके वे पूजा के आसन पर जा बैठीं, और शायद मन ही मन भगवान् का नाम ही जपने लगीं। बेनी उठकर धीरे-धीरे पैर रखता चला गया।

२

यह कुर्याँपुर गाँव की ज़मींदारी कैसे प्राप्त हुई, इसका एक इतिहास है। वह इतिहास यहाँ कह देने की आवश्यकता है। कोई सौ वर्ष पहले महा-कुलीन बलराम मुखर्जी अपने मित्र और नामरासी बलराम घोषाल को साथ लेकर अपने निवास-स्थान विक्रमपुर से इस गाँव में आ बसे थे। मुखर्जी महाशय कोरे कुलीन ही नहीं, बुद्धिमान् भी थे। उन्होंने ब्याह करके, बर्दवान के राजा के यहाँ नौकरी करके—और और भी न जाने क्या-क्या करके—यह ज़मींदारी अपने हाथ में कर ली। घोषाल महाशय ने भी

भी इसी तारु के किसी गाँव में अपना ब्याह किया। लेकिन पिता के ऋण को चुका देने के सिवा उनमें और कोई क्षमता ही नहीं थी, इसी कारण दुःख और कष्ट में उनके दिन बीतते थे। इसी विवाह के उपलब्ध में दोनों मित्रों के बीच मनमैली पैदा हो गई। अन्त को बढ़ते-बढ़ते उस मनमुटाव ने ऐसे भगड़े का रूप धारण कर लिया कि बीस बरस तक, एक गाँव में रहकर भी, किसी ने किसी का मुँह नहीं देखा। बलराम मुखर्जी की जिस दिन मृत्यु हुई उस दिन भी बलराम घोषाल ने उनके घर में पैर नहीं रक्खा। किन्तु मुखर्जी की मृत्यु के दूसरे दिन बड़ी ही अद्भुत और आश्चर्यजनक बात सुनाई पड़ी। मालूम हुआ कि वे अपनी सारी जायदाद बराबर के दो भागों में बाँटकर अपने पुत्र और मित्र के पुत्रों को दे गये हैं। तभी से मुखर्जी और घोषाल के वंशधर बराबर इस कुर्याँपुर की ज़मींदारी का उपभोग करते आ रहे हैं। दोनों वंशों के उत्तराधिकारी खुद भी अपने ज़मींदार होने का गर्व प्रकट करते थे, और गाँव के लोग भी उसे अस्वीकार नहीं करते थे।

हम जब का जिक्र कर रहे हैं, तब घोषाल-वंश की सम्पत्ति भी दो हिस्सों में बँट गई थी। उक्त वंश के दो भाइयों में से छोटे भाई तारिणी घोषाल किसी मुकदमे के लिए ज़िला-अदालत जाकर पेशी के छः दिन पहले ही एकाएक एक दिन, छोटे-बड़े ५-७ मुत्तवी मुकदमों के फ़ैसले की प्रतीक्षा किये बिना ही, न जाने कहाँ की किस अज्ञात कचहरी के महामान्य सम्मन को शिरोधार्य करके चुपचाप चल दिये, तब उनके कुर्याँपुर गाँव में भारी सन्नाटा छा गया। बड़े भाई का पुत्र बेनी घोषाल अपने चाचा की मृत्यु होने से गुप्त रूप से आराम की साँस लेकर घर आया, और उससे भी अधिक गुप्त रूप से अपना दल इकट्ठा करने लगा। किस तरह अपने चाचा की तेरहों के दिन का श्राद्ध और ब्रह्मभोज असफल किया जा सकेगा, यही सोचने में उसने अपनी बुद्धि और शक्ति लगा दी। चाचा और भतीजे ने दस वर्ष से परस्पर एक-दूसरे का मुँह नहीं देखा था। दस साल पहले तारिणी की स्त्री का पीछा हुआ था।

तभी से वे अपने पुत्र रमेश को उसके मामा के घर भेजकर अपने घर में नौकर-चाकरों के साथ रहने लगे थे और मुकदमेबाज़ी में अपना समय बिताते थे। रमेश रुड़की-कालेज में पढ़ता था। वहीं उसे पिता के मरने का दुःसंवाद मिला। वह बहुत दिनों के बाद पिता की तेरहीं-दसवाँ वगै-रह करने के लिए, कल तीसरे पहर, अपने खाली घर में आया है।

घर में श्राद्ध और ब्रह्मभोज होनेवाला है। तेरहीं के दो दिन बाकी हैं। बृहस्पतिवार को रमेश के पिता की तेरहीं होगी। दो-दो, एक-एक करके दूसरे गाँवों के बड़े-बूढ़े मुखिया लोग आने लगे; किन्तु अपने गाँव कुर्याँपुर का कोई भी आदमी नहीं भाँका। रमेश ने इस पर ध्यान दिया। उसने सोचा कि शायद ठीक अवसर पर भी इस गाँव का कोई न आवेगा। इस गाँव के केवल मैरव आचार्य और उनके घर के लोग आये और शामिल हुए थे। अपने गाँव के ब्राह्मणों के पधारने की आशा न होने पर भी रमेश ब्रह्मभोज की तैयारी बड़े आदमी की सी ही कर रहा था। आज बहुत देर तक वह घर के भीतर ही काम-काज और देख-भाल में लगा रहा था। किसी काम के लिए वह बाहर आया तो देखा, इसी बीच में दो बूढ़े भले आदमी आकर बैठक में बिछौने पर बैठे हुक्का पी रहे हैं। उनके सामने आकर विनीत भाव से उसने कुछ कहना चाहा, किन्तु उसके पहले ही पीछे आहट पाकर घूमकर देखा, एक बहुत ही बूढ़ा आदमी ५-६ लड़की-लड़के साथ लिये खाँसता-खाँसता भीतर दाखिल हुआ। उसके कन्धे पर बहुत मैली सी चादर पड़ी थी, नाक पर बहुत मोटी और बड़े तालों की ऐनक चढ़ी थी—जो पीछे ढोरे से बँधी थी—सिर के बाल और मूँछ-दाढ़ी सन के माफ़िक सफ़ेद हो रही थी, मूँछें चिलम के धुएँ से ताँबे के रङ्ग की हो रही थीं। आगे बढ़कर उस भयानक ऐनक के भीतर से रमेश के चेहरे की ओर दम भर ताकते रहकर बिना कुछ कहे-सुने वह वृद्ध रो उठा।

रमेश ने नहीं पहचाना कि वह कौन है। किन्तु चाहे जो हो, अपने यहाँ आया है इस विचार से, जल्दी से पास आकर रमेश ने वृद्ध का हाथ पकड़ लिया। वृद्ध भरीई हुई आवाज़ में कह उठा—ना भैया रमेश, मुझे

स्वप्न में भी यह खयाल न था कि तारिणी इस तरह दशा दे जायगा; किन्तु मैं भी चटर्जी घराने का हूँ। मेरा ऐसे वंश में जन्म ही नहीं हुआ कि किसी के डर से मेरे मुँह से झूठ बात निकले। यहाँ आते समय बेनी घोषाल के मुँह पर ही मैं तो कह आया कि हमारा रमेश ब्रह्मभोज और श्राद्ध की जैसी तैयारी कर रहा है, वैसी तैयारी करना तो चूल्हे में जाय, वैसी तैयारी इस तरफ़ किसी ने आखि से देखी भी न होगा। (ज़रा ठहरकर) बहुत साले आकर मेरे नाम से तुमसे तरह-तरह की बातें कहेंगे भैया, बहुत कुछ लगावें-बुझावेंगे, किन्तु तुम यह निश्चय जानो कि यह धर्मदास, अपने नाम के अनुसार, केवल धर्म का ही दास है, और किसी की परवा नहीं करता।

अब वृद्ध धर्मदास सत्य बोलने की सारी बहादुरी अपने ही हिस्से में बताते हुए, गोविन्द गांगुली के हाथ से हुक्का छीनकर, एक कश खींचते ही बड़े ज़ोर से खाँसने लगे।

धर्मदास ने एकदम अत्युक्ति नहीं की थी। रमेश जैसा उद्योग और आयोजन कर रहा था वैसा इस तरफ़ आज तक किसी ने कभी नहीं किया था। कलकत्ते से कारीगर हलवाई आये थे। उन्होंने आँगन में एक किनारे भट्ठी खोदकर कढ़ाव चढ़ा रक्खा था। उस तरफ़ गाँव के पास-परोस के कुछ लड़की-लड़के भीड़ लगाये खड़े थे। फ़क़ीरों-कज़ालों को कपड़े बाँटे जानेवाले थे। देवी-मन्दिर के उस तरफ़ के बरामदे में रमेश का अनुगत भैरव आचार्य थान फाड़-फाड़कर वस्त्र तहा-तहाकर रख रहा था। उस ओर भी कई आदमी हाथों पर गाल रक्खे, ताक लगाये बैठे, इस अप्रव्यय की मात्रा का हिसाब लगाते हुए, मन ही मन रमेश को उसकी मूर्खता के लिए गालियाँ दे रहे थे। बहुत से ग़रीब-दुखी ख़बर पाकर दूर का रास्ता तय करके आ-आकर जमा हो रहे थे। आये हुए लोग, गाँव की प्रजा, भिखमङ्गे आदि जमा होकर कोलाहल कर रहे थे। कोई लड़-भगड़ रहा था, कोई बातचीत कर रहा था। चारों ओर यह धूमधाम और बे-हिसाब खर्च देखकर वृद्ध धर्मदास की खाँसी का वेग और भी बढ़ गया।

धर्मदास की पूर्वोक्त उक्ति के प्रत्युत्तर में रमेश संकुचित होकर 'ना, ना' कहकर कुछ और भी कहनेवाला था; किन्तु धर्मदास ने हाथ हिलाकर उसे रोक दिया, और सिलसिलेवार न जाने क्या-क्या बक गये। मगर खाँसी के शब्द के मारे उसका एक अक्षर भी समझ नहीं पड़ा।

गोविन्द गांगुली सबसे पहले आये थे। अतएव धर्मदास ने इस समय रमेश की प्रशंसा के साथ-साथ जो कुछ कहा, वह कहने का सुयोग उन्हीं को सबसे अधिक था; तथापि उन्होंने वैसा नहीं किया। अब मौका हाथ से निकाल देने की अपनी मूर्खता को याद करके मन ही मन उन्हें भारी क्षोभ हुआ। उन्होंने अब यह दूसरा मौका हाथ से जाने देना ठीक न समझा। धर्मदास को उद्देश करके चटपट कह उठे—कल तड़के, समझे धर्मदास दादा, यहाँ आनेवाला था, राह में बेनी घोषाल ने रोक लिया। उससे पीछा छुड़ाकर न आ सका। बेनी ने कहा—'गोविन्द चाचा, ज़रा तमाखू पीते जाओ।' पहले मैंने सोचा कि जाने की कोई ज़रूरत नहीं, मगर उसके बाद यह खयाल आया कि ज़रा बेनी के मन की थाह तो ले लूँ; देखूँ, क्या कहता है। बेनी ने क्या कहा, जानते हो भैया रमेश! बोला—'चाचा, तुम लोग तो रमेश के सिरधरा बनकर खड़े हुए हो, लेकिन मैं यह पूछता हूँ, गाँव के लोग और ब्राह्मण वगैरह उसके यहाँ भोजन भी करेंगे?' मैं ही भला कब छोड़नेवाला था! वह बड़ा आदमी है, तो मेरा रमेश भी तो किसी से कम नहीं है। उसके यहाँ तो मुट्ठी भर चिड़वे पाने या खाने की भी कोई आशा नहीं करता। मैंने कहा—बेनी बाबू, यही तो उधर की राह है। एक दफ़े वहाँ का ब्रह्मभोज और मँगतों की बिदाई खड़े होकर देख ही न लो। अभी कल का लड़का है रमेश, लेकिन हिम्मत इसको कहते हैं! मेरी इतनी उमर हुई, ऐसी तैयारी और धूमधाम तो मैंने कभी अपनी आँखों से नहीं देखी!—लेकिन सच तो यह है धर्मदास दादा, हमारी शक्ति ही क्या है, हम कर ही क्या सकते हैं! जिनका यह कृत्य हो रहा है, वही सब यह उपर से करा रहे हैं। तारिणी दादा तो एक शाप-भ्रष्ट दिक्पाल ही थे, और क्या!

धर्मदास की खाँसी किसी तरह दम नहीं लेती थी। और, उसके मुँह के सामने गांगुली महाशय बड़ी-बड़ी चुनी हुई बातें इस अपरिणत-वयस्क नवयुवक ज़मींदार के आगे कहने लगे। यह देखकर धर्मदास मानो और भी अधिक खुशामद की बातें कहने के लिए छुटपटाने लगा।

गांगुली ने उसी सिलसिले में कहा—तुम तो मेरे कोई ग़ैर नहीं हो भैया, बिलकुल ही अपने हो। तुम्हारी माँ तो मेरी फुफेरी बहन की ममेरी बहन ही थीं। राधानगर के बनर्जी-परिवार में—ये सब बातें तुम क्या जानो, तारिणी दादा जानते थे। इसी से चाहे जो कोई काम-काज हो, मामला-मुकदमा हो, गवाही देनी हो, बस बुलाओ गोविन्द गांगुली को।

धर्मदास जी-जान से खाँसी को रोककर खीभ के साथ झिड़कते हुए कह उठे—क्यों बेकार की बातें बक रहा है गोविन्द ? (खाँसी) मैं आज का नहीं हूँ—मैं क्या नहीं जानता ? उस साल गवाही देने के लिए कहने पर तूने कहा—मेरे जूते तो हैं ही नहीं, नंगे पैरों अदालत कैसे जाऊँ ? (खाँसी) इस पर फ़ौरन् तारिणी ने ढाई रुपये का एक जूते का जोड़ा तुम्हें ख़रीद दिया था। तू वही पहनकर बेनी की तरफ़ से गवाही देने गया था। (खाँसी)

गोविन्द ने लाल-लाल आँखें निकालकर कहा—क्या कहा ? जूतों के लिए गवाही देने गया था ?

धर्मदास—नहीं गया था ?

गोविन्द—दुर झूठे कहीं के !

धर्मदास—भूठा होगा तेरा बाप !

गोविन्द अपनी टूटी छतरी हाथ में लेकर मारने के लिए उछल पड़े। बोले - तो ले साले फिर !

धर्मदास ने भी अपनी बाँस की लठिया ऊपर उठाकर हुमकने के साथ ही खाँस दिया। प्रचण्ड खाँसी ने उसे हिला दिया। रमेश घबराया हुआ झटपट झपटकर दोनों के बीच में खड़ा हो गया। यह हाल देखकर वह सन्नाटे में आ गया। धर्मदास लठिया नीची करके

खाँसते-खाँसते बैठ गये, और कहने लगे—इस साले का रिश्ते में मैं बड़ा भाई होता हूँ कि नहीं, साले की अकिल तो देखो—

“वाह ! यह साला मेरा बड़ा भाई बनता है !” यह कहकर गोविन्द गांगुली ने भी अपनी छुतरी समेट ली ।

शहर के हलवाई भट्ठी पर बैठे थे । वे अपना काम बन्द कर इस तमाशे की ओर ताकने लगे । चारों ओर जो लोग तरह-तरह के कामों में लगे हुए थे वे, शोर-गुल सुनकर, काम-काज छोड़ तमाशा देखने को सामने दौड़े आये । लड़के-बाले खेलना छोड़कर मुँह बाये मज़ा देख रहे थे । और, इन सब लोगों की नज़र के सामने रमेश लज्जा और विस्मय के मारे हतबुद्धि की तरह स्तब्ध होकर खड़ा रहा । उसके मुँह से एक बात भी नहीं निकली । यह क्या ? दोनों ही वृद्ध हैं, भले आदमी हैं, ब्राह्मण हैं ! फिर भी इतनी साधारण बात पर इस प्रकार कुँजड़े-कबाड़ियों की तरह गाली-गलौज कर रहे हैं ! बरामदे में बैठकर भैरव थान से धोतियाँ फाड़कर तहा-तहाकर रखता हुआ सब देख-सुन रहा था । वहाँ से आकर रमेश को लक्ष्य करके उसने कहा—चार सौ के लगभग धोतियाँ फाड़कर रख दी हैं । अब और भी चाहिए क्या ?

रमेश के मुँह से एकाएक बात ही नहीं निकली । भैरव रमेश के इस अभिभूत भाव को लक्ष्य करके हँसा । उसने कोमल फिड़की के स्वर में कहा -- छिः गांगुली बाबा ! देखो, बाबूजी कैसे सन्नाटे में आ गये हैं ।—आप कुछ इसका खयाल न करें बाबूजी, इस तरह की बातें अक्सर हुआ करती हैं । बड़े-बड़े काम-काजों के अवसर पर लोगों के घर में कितनी ही गाली-गलौज, मार-पीट, खून-खराबी तक हो जाया करती है । उसके बाद फिर जैसी की तैसी शान्ति हो जाती है ।—ले उठो चटर्जी बाबा, देखो तो, धोतियों के लिए और थान फाड़े जायँ कि नहीं ?

धर्मदास के कुछ उत्तर देने के पहले ही गोविन्द गांगुली उत्साह के साथ सिर हिलाते हुए उठ खड़े हुए, और कहने लगे—होता ही है ! होता ही है ! इस तरह का भगड़ा हुआ ही करता है ! इसी से तो इन

भारी काम-काजों की शोभा होती है। शास्त्र में लिखा है, लाख बातें हुए बिना ब्याह ही नहीं होता ! तुमको याद है भैरव, उस साल मुखर्जी भैया की लड़की रमा ने जिस दिन वृत्त लगाने का उत्सव किया था उस दिन एक सीधे के लिए राघव भट्टाचार्य और हारान चटर्जी, दोनों ब्राह्मण लड़ पड़े थे -- दोनों में मुड़फुड़ौवल हो गई थी। लेकिन मैं कहता हूँ भैरव भाई, भैयाजी का यह काम अच्छा नहीं हो रहा है। छोटी जाति के कँगलों को धोती-कपड़े देना और राख में घी डालना एक ही बात है। इससे तो अच्छा यह होगा कि ब्राह्मणों को एक जोड़ा धोती और लड़कों को एक धोती दे दी जाय। मैं कहता हूँ भैयाजी, इसी युक्ति से काम करो। क्यों धर्मदास दादा, ठीक है न ?

गोविन्द की बातें सुनकर धर्मदास ने सिर हिलाते हुए कहा—गोविन्द ने तो कुछ बुरा नहीं कहा भैयाजी। इन छोटी जाति के कँगलों को चाहे जितना दे डालो, उससे कुछ भी नाम न होगा। यह बात न हो तो ये सब छोटे लोग क्यों कहलावें ! समझे भैया रमेश ?

रमेश अभी तक चुप था। इस वस्त्र बाँटने की ऐसी आलोचना सुनकर उसके मर्मस्थल को चोट पहुँची। इन बातों की सुयुक्ति या कुयुक्ति से वह व्यथित नहीं हुआ, उसे तो यह बात सबसे अधिक अखरी कि ये दोनों वृद्ध जिन्हें छोटा आदमी कह रहे हैं, उन्हीं की हज़ारों आँखों के सामने अभी ये इतना बड़ा लज्जाजनक कार्य कर बैठे, और इसके लिए इनके मन में ज़रा भी क्षोभ या लज्जा नहीं है। भैरव को अपने मुँह की ओर ताकते देखकर रमेश ने संक्षेप में कहा—और भी दो सौ धोतियाँ फाड़कर रख लो।

गोविन्द चट कह उठा—इतने के बिना कहीं काम चल सकता है ? चलो भैरव भैया, मैं भी चलता हूँ। तुम अकेले कहाँ तक काम करोगे ?

किसी की सम्मति की अपेक्षा न करके गोविन्द उठकर कपड़ों के ढेर के पास जा बैठा। रमेश ज्योंही घर के भीतर जाने लगा त्योंही धर्मदास ने उसे बुलाकर एक तरफ़ ले जाकर चुपके-चुपके बहुत सी बातें कहीं।

उनके जवाब में रमेश केवल सिर हिलाकर अपनी सम्मति जताकर भीतर चला गया। कपड़े के टुकड़े तहाते और सँभालकर रखते-रखते गोविन्द गांगुली कनखियों से सब देख रहा था।

“कहाँ हैं भैयाजी, कहाँ गये ?” कहते हुए एक दुबले-पतले शिथिल शरीरवाले दाढ़ी-मूँछ-मुँड़े वृद्ध ब्राह्मण ने इतने में प्रवेश किया। इनके साथ भी तीन लड़की-लड़के थे। लड़की सबसे बड़ी थी। वही सिर्फ एक बहुत जीर्ण डेरिये की धोती पहने थी। दोनों बालकों की कमर में एक-एक काले सूत के कर्गदे के सिवा और कुछ न था; दोनों नङ्गे ही थे। जो लोग वहाँ उपस्थित थे, सबने सिर उठाकर देखा। गोविन्द ने अभ्यर्थना करते हुए कहा—आओ आओ दीनू दादा, बैठो। हम लोगों के बड़े भाग्य हैं, जो आज आपके चरण यहाँ पड़े। लड़का अकेले काम करते-करते चूर हुआ जा रहा है, सो आप लोग तो—

धर्मदास ने गोविन्द की ओर कठोर दृष्टि डाली। लेकिन गोविन्द ने उस पर ध्यान न देकर फिर कहना शुरू किया—सो आप लोग तो कोई इधर पधारते ही नहीं, जैसे इधर आने की कसम ही खा ली है, दादा—

अब गोविन्द ने दीनू दादा के हाथ में हुक्का दे दिया। दीनू भट्टाचार्य ने बैठकर जली हुई चिलम से दो दफ्ते धुआँ खींचकर कहा—मैं तो यहाँ था ही नहीं भैया, तुम्हारी भाभी को लेने के लिए उनके मायके गया था। भैयाजी कहाँ हैं? सुनता हूँ, बड़ी धूमधाम की तैयारी हो रही है! राह में आते समय उस गाँव के बाज़ार में सुना, भरपेट खिला-पिलाकर लड़कों और बूढ़ों को सोलह-सोलह पूरियाँ और आठ-आठ सन्देश (एक बङ्गाली मिठाई) दिये जायँगे।

गोविन्द ने धीमी आवाज़ में कहा—इसके सिवा शायद एक-एक धोती भी दी जाय। लो, रमेश भैया आ गये। मैं दीनू दादा से वही कह रहा था कि तुम बड़े-बूढ़ों के पुण्य-प्रताप और माता-पिता के आशीर्वाद से सब तैयारी तो एक तरह से हो गई; किन्तु बेनी एकदम जी-जान से सब बिगाड़ने के लिए कोशिश कर रहा है। मेरे ही पास दो दफ्ते उसका

आदमी हो गया है। न हो, मेरी बात जाने ही दो, मेरा तो रमेश के साथ रक्त-मांस का सम्बन्ध है, लेकिन ए दीनू दादा, धर्मदास दादा वगैरह ही क्या तुमको छोड़ सकते हैं भैया ? कभी नहीं। दीनू दादा तो राह में ख़बर सुनते ही दौड़े आये हैं। अरे ओ षष्ठीचरन, ज़रा तमाखू तो भर दे। भैया रमेश, ज़रा इधर तो आओ, एक बात तुमसे कहनी है !

एकान्त में बुला ले जाकर गोविन्द ने धीरे से पूछा—भीतर घर में क्या धर्मदास की घरवाली आई है भैया ? ख़बरदार, ख़बरदार, ऐसा काम कभी न करना भैया ! यह खुशामदी ब्राह्मण चाहे जितनी बातें बनावे, चाहे जितना फुसलावे, उसकी घरवाली के हाथ में भण्डारे की ताली-वाली न दे देना भैया, किसी तरह न देना ! बड़ी चालाक औरत है ! घी, मैदा, नोन, तेल, शक्कर वगैरह सब सामान आधे से अधिक अपने घर पहुँचा देगी ! तुम्हें चिन्ता क्या है भैया ? मैं घर जाकर तुम्हारी मामी (यानी अपनी जोरू) को यहाँ भेज दूँगा। वह आकर भण्डारे की चौकसी करेगी। उसके हाथ में ताली रहने से क्या मजाल, कोई एक तिनका भी उठाकर ले जा सके ! तुम्हारा रत्ती भर भी नुक़सान न होने पावेगा !

रमेश सिर हिलाकर “बहुत अच्छा” कहकर चुप रह गया। उसको बेहद विस्मय हुआ। धर्मदास ने भण्डारे की देख-भाल के लिए अपनी स्त्री को भेज देने की बात इस तरह छिपाकर अलग ले जाकर कही थी कि किसी को कानोंकान ख़बर न हो। गोविन्द ने इस बारे में ठीक अन्दाज़ा कैसे लगा लिया !

दानों नङ्ग-धड़ङ्ग लड़के दौड़ते हुए आकर वृद्ध दीनू के कन्धों पर लदकर कहने लगे—बप्पा, सन्देश खायेंगे।

दीनू ने एक दफ़े रमेश की ओर और एक बार गोविन्द की ओर नज़र डालकर कहा—सन्देश मैं कहाँ पाऊँ रे ?

“क्यों, वह बन तो रहे हैं” कहकर उन्होंने दूसरी ओर बैठे हुए हल-वाइयों की तरफ़ हाथ से इशारा किया।

“हम भी खायेंगे दादा !” कहकर नक्की स्वर से रोते हुए और भी तीन-चार लड़की-लड़के दौड़ते हुए आये, और उन्होंने चारों ओर से वृद्ध धर्मदास को घेर लिया । “अच्छा, अच्छा” कहकर रमेश जल्दी से आगे बढ़ आया, और भैरव से बोला—अजी आचार्यजी, तीसरे पहर ये सब लड़के घर से चले होंगे, खा-पीकर तो आये न होंगे । अजी ए, तुम्हारा क्या नाम है ? ले तो आओ वह थाल इस तरफ़ ।

हलवाई जैसे सन्देशों का थाल लेकर आया, वैसे ही लड़के सब मुँह के बल उसी पर टूट पड़े । इस तरह सब ओर से घेर लिया, और छीना-भपटी करने लगे कि ब्रॉटने का अवकाश ही नहीं मिलने पाता था । लड़कों को यों खाने में जुटे हुए देखते-देखते दीनानाथ की शुष्क, दीन दृष्टि दमभर में सजल और तीव्र हो उठी । बोले—अरे ओ खेंदी, तू तो खा रही है, बता तो भला, सन्देश खाने में कैसे हैं ? कैसे बने हैं ?

“बहुत अच्छे हैं बप्पा !” कहकर खेंदी खूब चबा-चबाकर खाने लगी ।

दीनू दादा ने ज़रा हलकी हँसी के साथ गरदन हिलाते हुए कहा—तुम बच्चों को इस चीज़ की क्या तमीज़ ? मिठाई होनी चाहिए, तुम उसी में मगन हो उठते हो ।—हाँ जी कारीगर भैया, यह कढ़ाव तुमने क्यों उतार लिया ?—क्यों गोविन्द भैया, अभी थोड़ी-थोड़ी धूप है न ? मुझे तो जान पड़ती है ।

हलवाई ने किसी ओर न देखकर तुरन्त उत्तर दिया—जी हाँ, धूप क्यों नहीं है ! अभी बहुत दिन बाक़ी है, अभी सन्ध्या-पूजा का—

“अच्छा तो फिर लाओ एक सन्देश गोविन्द भैया को दो न, चखकर देखें, तुम कलकत्ते के कैसे कारीगर हो !—ना, ना, मुझे क्यों देते हो ? मुझे क्यों देते हो ?—खैर, लाओ आधा टुकड़ा दे दो, मगर आधे से अधिक नहीं ।—अरे ओ षष्ठीचरन, ज़रा जल तो ले आ भैया, हाथ धो लूँ—

इतने में रमेश ने बुलाकर कह दिया—“घर के भीतर से चार-पाँच रक्कबियाँ भी ले आ षष्ठीचरन ।”

मालिक के हुक्म के मुताबिक नौकर षष्ठीचरन भीतर से तीन-चार रकबियाँ और पानी पीने के लिए गिलास भी ले आया। देखते ही देखते उस बड़े थाल की आधी से अधिक मिठाई मलेरिया के सताये, दुबले-पतले इन तीन बूढ़े कुलीन ब्राह्मणों के जलपान में ही चट हो गई।

“मिठाई तो बढ़िया बनाई है। कलकत्ते का जैसा नाम है, वैसा ही कारीगरों का काम है! क्यों न धर्मदास दादा?”—यह कहकर बुढ़ऊ दीनानाथ ने फूल रही साँस छोड़कर दम लिया। धर्मदास दादा का जलपान अभी समाप्त नहीं हुआ था, हाथ और मुँह में होड़ चल रही थी। यद्यपि उनका अव्यक्त कण्ठस्वर सन्देश की तह को फोड़कर सहज में मुँह से बाहर नहीं निकला तथापि उन्होंने किसी तरह प्रकट कर दिया कि इस बारे में उनका मतभेद नहीं है।

“हाँ, बेशक उस्तादी का हाथ है!” कहकर गोविन्द सबके पीछे हाथ धोनेवाला ही था कि हलवाई ने विनयपूर्वक अनुरोध किया—देवताजी, जब इतना कष्ट किया ही है तब मिहीदाना (एक मिठाई) भी चखकर परख लीजिए।

“मिहीदाना? कहाँ है? लाओ तो भैया!” कहकर गोविन्द महाराज हाथ धोने से रुक रहा।

मिहीदाना भी आया। और, इतने सन्देश उड़ा जाने पर भी इस नई मिठाई को जिस परिमाण में वृद्ध ब्राह्मण ने चक्खा, उसे देखकर रमेश आश्चर्य के साथ ताकता रह गया।

दीनानाथ ने अपनी लड़की की ओर हाथ फैलाकर कहा—अरे ओ खेदी, ले तो बिटिया, ये दो मिहीदाना की डली भी खा ले।

“मुझसे अब न खाया जायगा बप्पा!” कहकर लड़की ने अनिच्छा प्रकट की। किन्तु ब्राह्मण देवता कब माननेवाले थे। बोले—क्यों न खाया जायगा? कौन बहुत है? पहले घूँट भर पानी पीकर गला तर कर ले। मुँह बँध गया होगा मिठाई के मारे। जो न खाये जायँ, तो धोती के खूँट में बाँध ले, कल सबेरे खा लेना।—हाँ भैया, तुमने खूब

बढ़िया पदार्थ खिलाये । मिठाई क्या है अमृत है ! खूबी के साथ काम करना इसी को कहते हैं ! और क्या !—तो मिठाई दो तरह की बनवाई है भैया साहब, क्यों न ?

रमेश को उत्तर देने की जरूरत नहीं पड़ी । हलवाई उत्साह के साथ कह उठा—अजी दो ही नहीं, कई मिठाइयाँ हैं—रसगुल्ला, खीरमोहन—

“ऐं ! खीरमोहन ? कहाँ है ? वह तो तुमने चखाई ही नहीं भैया ?” कहकर वृद्ध ने अपने मरभुखेपन का परिचय दिया ।

विस्मित रमेश के चेहरे की ओर देखकर दीनानाथ ने कहा—भोजन किया था राधानगर के वसु बाबुओं के यहाँ ब्रह्मभोज में मैंने । आज तक उस भोजन का स्वाद मुँह से नहीं गया । कहने से विश्वास न करोगे तुम भैया साहब, खीरमोहन मैं बड़ी रुचि से खाता हूँ ।

रमेश ने ज़रा गरदन हिला दी । इस बात पर विश्वास करना उसके लिए अधिक कठिन न था । राखाल किसी काम से बाहर जा रहा था । रमेश ने उसे बुलाकर कहा—भीतर शायद आचार्यजी होंगे । जा तो राखाल, उनसे कह दे, थोड़ा सा खीरमोहन ले आवें ।

शायद सन्ध्याकाल गुज़र गया था । तो भी ये तीनों ब्राह्मण देवता खीरमोहन की आशा में उत्सुकता के साथ डटे बैठे रहे । राखाल ने आकर कहा—आज अब भण्डारे का ताला न खोला जायगा बाबूजी ।

रमेश मन में खीझ उठा । बोला—जाकर कह दे, मैं माँगता हूँ ।

गोविन्द गांगुली रमेश के असन्तोष को ताड़ गया । उसने आँखें मटककर कहा—देख लिया दीनू दादा ! भैरव की कैसी अक्लिल है ! वही मसल है कि “दाता दे भण्डारी का पेट पिराय !” इसी से तो कहता हूँ—

वे क्या कहते हैं, यह बिना सुने ही राखाल कह उठा—आचार्य भैया क्या करें, उस घर की बड़ी बहू ने आकर खुद भण्डारा बन्द करके ताला डाल दिया है ।

धर्मदास और गोविन्द गांगुली चौंक पड़े । बोले—कौन बड़ी बहू ? रमेश ने भी विस्मय के साथ पूछा—क्या चाची आई हैं ?

“जी हाँ, उन्होंने आते ही छोटी और बड़ी, दोनों भण्डारों की कोठरियों में ताला बन्द कर दिया है।”

विस्मय और आनन्द के मारे रमेश के मुँह से और कोई बात नहीं निकली; वह तेज़ी के साथ भीतर चल दिया।

३

रमेश ने पुकारा—“चाची !” सुनते ही विश्वेश्वरी भण्डारे के भीतर से बाहर आ गई। बेनी की अवस्था के साथ तुलना करने से उसकी माता की अवस्था पचास साल से कम न होनी चाहिए किन्तु देखने में उनकी अवस्था चालीस बरस से अधिक किसी तरह न जान पड़ती थी। रमेश एकटक उनकी ओर देख रहा था। आज भी विश्वेश्वरी का रङ्ग वही कुन्दन का सा है। इतने दिन तक जिस रूप और सौन्दर्य की इधर दूर-दूर तक प्रसिद्धि थी, वह विश्वेश्वरी का अनिन्द्य सौन्दर्य अभी उनके सुगठित अङ्गों और साँचे के से ढले शरीर को छोड़कर जाने नहीं पाया था। विधवा होने के कारण सिर के केश छाँटकर छोटे-छोटे कर दिये गये थे। सामने की दो-चार कुञ्चित लटें ललाट पर लटक रही थीं। ठोड़ी, कपोल, होंठ, ललाट आदि सब अङ्ग ऐसे सुझौल बने थे, जैसे किसी निपुण कारीगर ने उन्हें गढ़ा हो। सबसे बढ़कर आश्चर्यजनक उनकी आँखों की दृष्टि थी। उस ओर क्षण भर ताकने से धीरे-धीरे सारे अन्तःकरण में मोह का आवेश सा होने लगता था।

ये चाची एक समय रमेश को—खासकर उसकी स्वर्गवासिनी माता को—बहुत चाहती थीं। जब दोनों नई बहू थीं, कोई लड़का-बाला उनके न हुआ था, जब दोनों बहुएँ सास-ननद के उत्पीड़न के कारण होनेवाले कष्ट की यातना के बीच छिपाकर, मिल-बैठकर, एक साथ आँसू बहाती थीं तब—उसी ज़माने में—दोनों के हृदयों के बीच यह स्नेह-बन्धन का पहले-पहल गँठजोड़ा हुआ था। उसके बाद भाइयों में मन-

मुटाव हुआ, गृहविच्छेद हुआ, अदालत तक की नौबत आई, बँटवारा हो गया, अपनी-अपनी गिरस्ती अलग जमाई। तरह-तरह की आफ़तें दोनों परिवारों के ऊपर आई और गई। भगड़े-बखेड़े की खींच-तान में भूले-भटके भाइयों का बन्धुत्व का बन्धन ढीला तो पड़ गया था, परन्तु वह कभी टूट नहीं सका।

बहुत बरसों के बाद आज उसी छोटी बहू अर्थात् देवरानी के घर में भण्डारे के भीतर जाकर, उसी देवरानी के हाथ की रखी हुई बहुत सी हॉड़ी, कलसी, मटकी वगैरह पर नज़र डालते ही जिठानी अर्थात् रमेश की चाची की आँखें आँसू बहाने लगीं। रमेश के “चाची !” कहकर पुकारने पर जब वे आँसू पोंछकर बाहर निकलीं, तब उन भीगी और लाल हो आई आँखों को देखकर रमेश को क्षण भर के लिए विस्मय हुआ। चाची उसके विस्मय को ताड़ गई। इसी कारण, जान पड़ता है, इस पितृ-हीन रमेश के ऊपर दृष्टि पड़ते ही उनका हृदय भीतर से जो हाहाकार कर उठा, उसका लेश मात्र आभास भी उन्होंने बाहर प्रकट नहीं होने दिया, बल्कि ज़रा हँसकर बोलीं—मुझे पहचाना रमेश ?

उत्तर देने की चेष्टा करने पर रमेश के होंठ तनिक काँपकर रह गये। मा के मरने पर रमेश जब तक अपने मामा के घर नहीं गया, तब तक यही चाची उसे गोद में लिये, छाती से लगाये रही थीं, और किसी तरह उसे अपने से अलग करने को राज़ी नहीं हुई थीं। उसकी भी याद आई, और उस दिन का भी स्मरण हो आया, जिस दिन वह चाची के घर भेंट करने गया था, और चाची घर में नहीं हैं कहकर उसे चाची के दर्शन तक न करने दिये गये थे। उसके बाद रमा के घर में बेनी के सामने, और उसकी अनुपस्थिति में भी, रमा की मौसी ने उस दिन जो कठोर कुवाक्य कहकर तिरस्कार किया था, उससे उसने निश्चित रूप से समझ लिया कि इस गाँव में अब उसका कोई अपना नहीं है।

विश्वेश्वरी ने दम भर रमेश के मुँह की ओर निहारते रहने के बाद कहा—घबराते क्यों हो बेटा ? इस समय जी कड़ा कर लो।

चाची के स्वर में रत्ती भर भी कोमलता न थी। रमेश ने अपने को सँभाल लिया। उसने सोचा, जहाँ रुठने की कुछ इज्जत नहीं है, वहाँ उसे प्रकट करने के समान विडम्बना संसार में शायद ही दूसरी हो। उसने कहा—जी तो मैंने कड़ा ही कर लिया है चाची ! मैं तय कर चुका था कि आज जो कुछ कर पाऊँगा, वही करूँगा। तुम क्यों आईं ?

चाची ने हँसकर कहा—तू तो मुझे बुलाकर लाया नहीं है रमेश, जो मैं तुझे इसकी कैफ़ियत दूँ। ख़ैर, मेरी बात सुन। श्राद्ध का ब्रह्मभोज होने के पहले मैं भण्डारे के भीतर से कोई चीज़ निकालने न दूँगी। यहाँ से जाते समय भण्डारे की ताली तुझे ही मैं सौंप जाऊँगी, और कल आकर तुम्हीं से लूँगी। देख, और किसी के हाथ में ताली न देना !—हाँ, उस दिन तेरे बड़े भाई से तेरी भेंट हुई थी क्या ?

यह प्रश्न ऐसा था, जिसने रमेश को असमञ्जस में डाल दिया। उसकी समझ में न आया कि वे बेटे की करतूत को जानती हैं या नहीं। उसने ज़रा सोचकर कहा—उस समय तो बड़े दादा घर में नहीं थे।

पूर्वोक्त प्रश्न करके ही चाची के चेहरे पर एक उद्वेग की छाया आकर पड़ गई थी। रमेश ने स्पष्ट देखा, उसके इस उत्तर से वह भाव हट सा गया, और मुख प्रसन्न हो उठा। हँसकर स्नेहपूर्ण अनुयोग के स्वर में उन्होंने कहा—आह, मेरा नसीब ! अच्छा, एक बार भेंट नहीं हुई तो क्या फिर न जाना चाहिए ? मुझे मालूम है रे, वह तेरे ऊपर सन्तुष्ट नहीं है; लेकिन अपना कर्तव्य तो तुझे करना ही चाहिए ! ना, एक दफ़े जाकर अच्छी तरह कह रमेश ! वह बड़ा भाई है, उसके आगे झुकने में लज्जा की कोई बात नहीं। इसके सिवा यह समय मनुष्य के लिए विपत्ति का समय होता है भैया ! ऐसे समय ऐसे-वैसे आदमी के भी हाथ-पैर जोड़कर रफ़ा-दफ़ा कर लेने में भी कोई लज्जा नहीं है। बेटा, मेरे भैया, जा तो सही—इस समय वह घर में ही होगा।

रमेश चुप हो रहा। इस इतने अधिक आग्रह का कारण भी उसके आगे अच्छी तरह स्पष्ट नहीं हुआ, मन से संशय भी नहीं हटा। विश्वे-

श्वरी ने और भी पास आकर कोमल स्वर में कहा—बाहर जो लोग बैठे हुए हैं उन्हें मैं, तेरी अपेक्षा, अधिक जानती हूँ। उनकी बात न सुनना। आ मेरे साथ अपने बड़े भाई के पास चल।

रमेश ने गरदन हिलाकर कहा—चाची, यह न होगा। और, बाहर जो लोग बैठे हैं वे चाहे जो हों, इस समय तो वे ही मेरे सबसे अधिक अपने सगे हैं।

वह और भी न जाने क्या-क्या कहना चाहता था, किन्तु एकाएक चाची के मुँह की ओर देखकर अत्यन्त विस्मय के मारे चुप हो रहा। उसे जान पड़ा, चाची का मुख मानो अकस्मात् चारों ओर के सन्ध्या के अन्धकार से भी अधिक मलिन हो गया है। दम भर बाद उन्होंने एक साँस छोड़कर कहा—अच्छा, वही सही। जब तू उसके पास जा ही नहीं सकता, तब इस बारे में और कुछ कहना-सुनना बेकार है। खैर, चाहे जो हो भैया, तेरा कोई काम अटका नहीं रहेगा। मैं सबेरे ही फिर आऊँगी।

अब विश्वेश्वरी अपनी दासी को बुलाकर उसके साथ, खिड़की के द्वार से निकलकर, धीरे-धीरे चली गईं।

उन्होंने अनुमान कर लिया कि इस बीच में बेनी के साथ रमेश की मुलाकात हुई और कुछ कहा-सुनी भी हो गई है। वे जिस राह से चली गईं, उसी ओर कुछ देर खड़े-खड़े ताकते रहने के बाद रमेश मलिन मुख लिये जब बाहर आया, तब गोविन्द ने व्यग्र होकर पूछा—भैयाजी, बड़ी बहू आई थीं न ?

रमेश ने सिर हिलाकर कहा—हाँ।

गोविन्द—सुना है कि वे भण्डारे की कोठरी में ताला बन्द करके उसकी चाभी लेती गई हैं। क्यों ?

रमेश ने फिर वैसे ही सिर हिलाकर उत्तर में “हाँ” कहा। क्योंकि अन्त को न जाने क्या सोचकर विश्वेश्वरी जाते समय भण्डारे की चाभी आप ही ले गई थीं।

गोविन्द ने कहा—देखा धर्मदास दादा, मैंने जो तुमसे कहा था वही हुआ । इसका मतलब समझ गये न भैया साहब ?

रमेश के मन में अत्यन्त क्रोध हो आया ; किन्तु वह अपनी बेवसी का खयाल करके सब सहकर चुप रह गया । गरीब दीनू भट्टाचार्य अभी तक अपने घर नहीं गया था । उसमें उतनी बुद्धि भी नहीं थी । उसने जिसकी दया से मय अपने लड़के-बच्चों के पेट भरकर बढ़िया 'सन्देश' की मिठाई खाई थी उसे हृदय से दो-चार आशीर्वाद बिना दिये, सबके सामने ऊँचे स्वर से रमेश के सात पुरखों की प्रशंसा और स्तुति बिना किये घर लौटने को उसका जी नहीं चाहता था । वह बेचारा ब्राह्मण सीधे स्वभाव से कह उठा—इसका मतलब समझना क्या कठिन है भैया ? ताला बन्द करके चाभी ले जाने का अर्थ यही हुआ कि भण्डारे की चाभी और किसी के हाथ न पड़े । वे सब हाल तो जानती ही हैं ।

गोविन्द खीझा हुआ था । उसने मूर्ख दीनू भट्टाचार्य की बात से जल-भुनकर, धमकी बताकर, कहा—जब कुछ समझते-बुझते नहीं तब बीच में बोल क्यों उठते हो ? तुम इन बातों को क्या समझो, जो मतलब बताने आये हो !

इस धमकी से दीनू की मूर्खता और एक डिग्री बढ़ गई । उसने गरम पड़कर जवाब दिया—भला ! इसमें समझने-बुझने की बात ही क्या है ? सुनते नहीं हो, बड़ी बहू आप ताला बन्द करके चाभी ले गई हैं ? इसमें कोई क्या कह सकता है ?

गोविन्द ने आगबबूला होकर कहा—अपने घर क्यों नहीं जाते भट्टाचार्य ? जिस लिए दौड़े आये थे वह तो पूरा हो गया—घर भर ने मिलकर खाया-पिया, ऊपर से बाँध भी लिया; अब क्यों अड़े हुए हो ? खीर-मोहन परसों आकर खाना, आज अब नहीं कुछ हो सकता । जाओ, हम लोगों को बहुत से काम करने हैं ।

इस तिरस्कार से दीनू बेचारा लजित और संकुचित हो गया । रमेश उससे भी अधिक क्रोधित और कुण्ठित हो उठा । गोविन्द और भी

कुछ कहने जा रहा था, किन्तु एकाएक रमेश के शान्त किन्तु कठिन कण्ठ-स्वर को सुनकर रुक गया। रमेश ने कहा—आपको हो क्या गया है गांगुली चाचा ? चाहे जिसका इस तरह अपमान आप क्यों कर रहे हैं ?

गोविन्द इस भर्त्सना से पहले तो विस्मित हुआ, किन्तु वैसे ही सूखी हँसी हँसकर बोला—अपमान भला मैंने किसका किया भैया साहब ? अच्छा, इसी भट्टाचार्य से पूछ देखो न, मैंने सच बात कही है कि नहीं। वह डाल-डाल फिरता है तो मैं पात-पात फिरता हूँ। दीनू की हिम्मत देख ली तुमने धर्मदास दादा ? अच्छा—

धर्मदास दादा ने क्या देखा, यह वही जाने, किन्तु रमेश इस आदमी की बेहयाई और हिम्मत देखकर दङ्ग हो गया। तब दीनू ने रमेश की ओर देखकर आप ही कहा—ना भैया, गोविन्द ने बात सच ही कही है। मैं बड़ा ही गरीब हूँ, और यह बात सभी जानते हैं। इन लोगों की तरह मेरे ज़मीन, जमा, खेती-बारी कुछ नहीं है। माँग-जाँचकर—भिक्षा से ही—किसी तरह हमारा गुज़र होता है। अच्छी चीज़ मोल लेकर लड़के-बालों को खिलाने-पिलाने की सामर्थ्य तो मुझे भगवान् ने दी नहीं है, इसी से बड़े आदमियों के घर में कुछ काम-काज होने पर वहीं बच्चों को अच्छी चीज़ें खाने को मिल जाती हैं। कुछ खयाल न करो भैया, तारिणी दादा जब जीवित थे तब हम लोगों को खिला-पिलाकर बड़े प्रसन्न होते थे। इसी से मैं तुमसे निश्चय के साथ कहता हूँ भैया, हम लोगों ने जो आज जी भरकर तुम्हारे यहाँ भोजन किया है, उसे ऊपर स्वर्ग से देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता होगी।

एकाएक दीनू के गहरे सूखे नेत्रों में आँसू भर आये, टपटप् करके दो बूँद आँसू सबके सामने ही गिर पड़े। रमेश मुँह फेरकर खड़ा हो गया। दीनू ने अपने मैले और सैकड़ों जगह से फटे हुए दुपट्टे के छोर से आँसू पोंछकर कहा—केवल मैं ही नहीं भैया, इस तरह मेरे जैसे जितने गरीब-दुखी हैं, उनमें से कोई कभी तारिणी दादा के आगे हाथ फैलाकर खाली हाथ नहीं लौटा। किन्तु इस बात को कौन जानता है भला ? उनके

दाहने हाथ के दान की खबर बायें हाथ को भी नहीं होती थी। अब मैं तुम लोगों को दिक्क नहीं करूँगा। ले बिटिया खेंदी, उठ तो, बेटा हरिधन, चलो भैया घर चलें, कल फिर सबेरे आवेंगे। और क्या कहकर तुम्हें आशीर्वाद दूँ भैया रमेश, अपने बाप के समान सुशील होओ, तुम्हारी बड़ी उमर हो।

दीनू के साथ-साथ राह तक आकर रमेश ने आर्द्र स्वर से कहा—भट्टाचार्यजी, इन दो-तीन दिन मेरे ऊपर दया करते रहिएगा। और, कहते सङ्कोच होता है, यदि इस घर में हरिधन की मा के पैरों की रज पड़ सके, तो उसे मैं अपना बड़ा सौभाग्य समझूँगा।

भट्टाचार्य ने जल्दी से रमेश के दोनों हाथ पकड़कर स्त्रासे होकर कहा—मैं बहुत ही दुखी हूँ भैया रमेश। मुझसे इस तरह कोई कहता है तो मैं लज्जा के मारे मर सा जाता हूँ।

लड़के-बच्चों को साथ लेकर वृद्ध धीरे-धीरे चला गया। रमेश ने लौटकर अपनी कड़ी और रूखी बातों को याद करके गांगुलीजी से कुछ कहने की चेष्टा की ही थी कि वे रोककर स्वयं जोश के साथ कह उठे—यह तो मेरा अपना ही काम है रमेश। तुम न बुलाते तो मुझे अपने-आप आकर यह सब करना-धरना पड़ता। इसी से तो मैं स्वयं आया हूँ। मैंने और धर्मदास दादा ने तो तुम्हारे बुलाने की राह नहीं देखी भैया!

धर्मदास अभी तमाखू पीने से छुट्टी पाकर खाँस रहा था। उसने लाठी के सहारे खड़े होकर, खाँसी के वेग से मुँह और आँखें लाल करके, हाथ मटकाकर कहा—सुनो रमेश, हम लोग बेनी घोषाल नहीं हैं। हमारे बाप का—हमारे जन्म का—ठीक-ठिकाना है।

उसके इस कुत्सित इशारे को सुनकर रमेश चौंक उठा किन्तु उसने क्रोध नहीं किया। क्योंकि इतने से अल्प समय में ही उसने समझ लिया था कि ये लोग शिक्षा और अभ्यास के दोष से, बिना किसी सङ्कोच के, कितनी बड़ी निन्दित बात मुँह से निकाल रहे हैं, यह जानते भी नहीं।

चाची के स्नेह-सहित अनुरोध और उनके व्यथित मुख को स्मरण करके रमेश मन में पीड़ा का अनुभव कर रहा था। सबके चले जाने पर वह अपने बड़े भाई (बेनी घोषाल) के पास जाने के लिए तैयार हुआ। बेनी के चण्डी-मण्डप के द्वार पर जिस समय वह पहुँचा, उस समय रात के आठ बज चुके थे। जान पड़ा, मानो भीतर कुछ भगड़ा हो रहा है। गोविन्द गांगुली ही सबसे बढ़कर ज़ोर-ज़ोर से बोल रहा था। बाहर से ही रमेश को सुन पड़ा—गोविन्द बाज़ी लगाकर कह रहा है—यह जो दो दिन में नष्ट न हो जाय तो मेरा नाम गोविन्द गांगुली नहीं। ऐसा न हो तो तुम मेरा नाम बदल डालना बेनी बाबू! नवाबी मिज़ाज की बात तो तुमने सुनी ही होगी? मुझे मालूम है, तारिणी घोषाल एक पैसा छोड़कर नहीं मरा, फिर इतनी धूमधाम क्यों की जा रही है? पास पैसा हो तो चाहे जितनी धूम करो, किन्तु जायदाद गिरवी रखकर इतनी धूमधाम से बाप की तेरहीं और भोज करते तो मैंने कहीं किसी को देखा-सुना नहीं! मैं दावे के साथ कहता हूँ बेनीमाधव बाबू, इस छेकरे ने नन्दी साह की गद्दी से कम से कम तीन हज़ार रुपये ज़रूर कर्ज़ लिये हैं।

बेनी ने उत्साहित होकर कहा—इस बात को तो पक्के तौर से मालूम कर लेना चाहिए गोविन्द काका।

गोविन्द ने स्वर धीमा करके कहा—ज़रा सबर करो भैया! मुझे अच्छी तरह भीतर घुसने तो दो, उसके बाद (एकाएक बाहर देखकर)—बाहर कौन खड़ा है? कौन, भैया रमेश, तुम हो? हम लोगों के रहते इतनी रात को तुम क्यों घर के बाहर निकले भैया?

रमेश ने इसका कुछ उत्तर न देकर आगे बढ़कर बेनी घोषाल से कहा—बड़े दादा, मैं आपके ही पास आया हूँ।

बेनी सटपटा गया। उससे कुछ जवाब देते न बन पड़ा। किन्तु गोविन्द ने फ़ौरन् कहा—आओगे क्यों नहीं भैया, सौ दफ़े आओगे। आना ही चाहिए। यह भी तो तुम्हारा ही घर है। और बड़ा भाई

पिता के समान होता है। वही तो हम लोग भी बेनी बाबू से कहने आये हैं कि बेनी बाबू, तारिणी दादा से जो तुम्हारा मनमुटाव चला आ रहा था उसका अन्त उन्हीं के साथ हो गया। अब आपस में विरोध की क्या ज़रूरत है? तुम दोनों भाई मिल जाओ। यह देखकर हमारी भी आँखें ठण्डी हों। क्यों न हालदार मामा? खड़े क्यों हो भैया,—अरे कोई है रे, एक कम्बल-वम्बल का आसन लाकर बिछा नहीं देता?—ना बेनी बाबू, तुम बड़े भाई हो, तुम्हीं सब कुछ हो। तुम अलग रहोगे तो काम न चलेगा। इसके सिवा बड़ी बहू जब खुद जाकर मौजूद हुई थीं, तब—

बेनी चौंक उठा। तो क्या मा गई थीं?

इस चौंकने पर लक्ष्य करके गोविन्द मन ही मन खुश हो उठा। किन्तु बाहर अपने इस भाव को प्रकट न होने देकर बिलकुल ही सीधे-सादे भलेमानुस की तरह उक्त समाचार को खूब फैलाकर, बढ़ाकर, इस प्रकार कहने लगा—सिर्फ गई ही क्यों थीं, भगदारे की देखरेख तथा और जो कुछ काम-काज था सो सब उन्हीं ने किया था। सच तो यह है कि वे न करतीं तो और करता कौन?

सभी चुप हो रहे। गोविन्द ने एक लम्बी साँस छोड़कर कहा—इस गाँव भर में बड़ी बहू के समान समझदार, सुधर, सुशील स्त्री दूसरी नहीं है। क्यों न हो! बेनी बाबू, सामने कहने से खुशामद समझी जायगी, कोई कुछ भी कहे, गाँव में अगर साक्षात् लक्ष्मी का अवतार कोई है तो तुम्हारी मा ही हैं। ऐसी माता क्या किसी को नसीब होती है?

अब फिर एक लम्बी साँस छोड़कर बुढ़ा गम्भीर भाव धारण करके चुप हो रहा। बेनी ने देर तक चुप रहकर अस्पष्ट स्वर में कहा—अच्छा।

गोविन्द ने जोर देकर कहा—केवल अच्छा कह देने से न होगा बेनी बाबू! तुमको जाना होगा, काम-काज करना होगा, सारा भार तुम्हारे ही ऊपर है। अच्छी बात है, आप सब लोग तो मौजूद ही हैं, निमन्त्रण किस तरह, किसे-किसे करना होगा, इसकी एक फ़र्द इसी समय यहीं बना क्यों न ली जाय? क्यों न भैया रमेश? ठीक है कि नहीं हालदार

मामा ! धर्मदास दादा, तुम चुप क्यों बैठे हो ? किसे निमन्त्रण देना होगा, किसे न देना होगा, तुम तो सब जानते ही हो ।

रमेश उठकर खड़ा हो गया, और सहज विनीत स्वर से बोला—बड़े दादा, जो एक बार घर में आने की कृपा कर सकिए—

बेनी ने गम्भीर होकर कहा—माँ जब हो आई हैं तब मेरा जाना न जाना—क्या कहते हो गोविन्द काका, है न ?

गोविन्द के कुछ कहने के पहले ही रमेश कह उठा—आप पर मैं जोर डालना नहीं चाहता बड़े दादा । जो कुछ असुविधा न हो तो एक बार जाकर देख-सुन आइएगा ।

बेनी चुप हो रहा ! कुछ कहने के लिए गोविन्द के चेष्टा करते ही रमेश उठकर चला गया । तब गोविन्द ने बाहर गरदन निकालकर रमेश के चले जाने का निश्चय कर लेने के बाद धीमे स्वर में फिस-फिस करके कहा—बेनी बाबू, बातचीत करने का ढङ्ग देखा ?

बेनी अन्यमनस्क होकर कुछ सोच रहा था, कुछ बोला नहीं ।

राह में चलते-चलते गोविन्द की बातों को याद करके रमेश को बड़ी घृणा हुई । वह आधी से अधिक राह से लौटकर उसी रात को दुबारा बेनी घोषाल के घर में गया । चण्डी-मण्डप के भीतर उस समय तर्क-वितर्क का कोलाहल बेहद जोर पकड़े हुए था; किन्तु उन सब बातों को सुनने की उसे इच्छा न हुई । उसने सीधे भीतर जाकर पुकारा—चाची !

चाची अपने दालान के सामने, बरामदे में, आँधरे में चुपचाप बैठी हुई थीं । इतनी रात को रमेश की आवाज़ सुनकर उन्हें विस्मय हुआ; बालीं—रमेश ? क्या है रे ?

रमेश उनके पास आ गया । चाची ने व्यस्त होकर कहा—ज़रा खड़े रहो बेटा, चिराग़ ले आने के लिए कह दूँ ।

“रेशनी की ज़रूरत नहीं है चाची, तुम उठकर कहीं जाने-आने की तकलीफ़ न करो ।” यह कहकर रमेश उस आँधरे में ही एक तरफ़ बैठ गया । चाची ने पूछा—इतनी रात को क्यों आये ?

रमेश ने कोमल स्वर में कहा—निमन्त्रण तो अभी तक भेजा नहीं गया। उसी के बारे में तुमसे सलाह करने आया हूँ।

चाची ने कहा—तब तो तुमने मुझे बड़ी कठिनाई में डाल दिया भैया ! अच्छा, गोविन्द गांगुली, चटर्जी वगैरह ये सब क्या कहते हैं—

रमेश ने बीच में ही रोककर कहा—मैं कुछ नहीं जानता चाची कि ये लोग क्या कहते हैं, जानने की इच्छा भी नहीं। तुम जो कहोगी वही होगा।

अकस्मात् रमेश की बातचीत की गरमी देखकर विश्वेश्वरी मन में विस्मित हो उठीं। क्षण भर चुप रहकर उन्होंने कहा—उस वक्त् तो तूने कहा था रमेश कि यही लोग तेरे सबसे अधिक अपने हैं ! जो हो, मैं औरत जात ठहरी, मेरे कहने से क्या होगा भैया ? उस पर इस गाँव में - और इसी गाँव में क्यों कहूँ, आजकल सभी गाँवों में—एक आदमी दूसरे से बात नहीं करता, एक दूसरे के साथ बैठकर भोजन नहीं करता। कोई काम-काज आ पड़ने पर आदमी की चिन्त। और दुर्भावना की सीमा नहीं रहती। किसको छोड़ा जाय और किसे बुलाया जाय ? इसका निश्चय करने से बढ़कर कठिन काम गाँव में नहीं है।

यह सुनकर रमेश को विशेष आश्चर्य नहीं हुआ; क्योंकि इन्हीं कई दिनों के भीतर इस बारे में उसे बहुत सी जानकारी हो गई थी। फिर भी उसने पूछा—ऐसा क्यों होता है चाची ?

“इसका पर्वार बहुत बड़ा है बेटा। जो तू यहाँ रहेगा तो आप ही सब जान लेगा। किसी के सचमुच दोष या कलङ्क है, किसी को भूठ-मूठ कलङ्क लगा दिया गया है। इसके सिवा मुकद्दमेबाज़ी और भूठी गवाही-साखी देने के कारण भी ज़बर्दस्त दलबन्दी देख पड़ती है। मैं जो तेरे यहाँ दो दिन पहले जाती रमेश, तो इतनी खाने-पीने की तैयारी और धूमधाम किसी तरह न करने देती। उस दिन क्या होगा, यही मैं सोच रही हूँ।” इतना कहकर चाची ने एक लम्बी साँस छोड़ी। उस साँस में क्या था, इसका मर्म रमेश नहीं जान सका। वह यह भी निश्चय न कर सका कि किसी का सच्चा अपराध अथवा किसी का भूठा अपवाद

क्या हो सकता है। उसने उत्तेजित होकर कहा—किन्तु मेरे साथ भूठे या सच्चे अपराध का कुछ सम्बन्ध नहीं है। मैं तो न ऊधो के लेने में हूँ न माधो के देने में। मैं तो इस गाँव के लिए एक विदेशी आदमी हूँ। मेरी किसी के साथ कुछ भी शत्रुता नहीं है। इसी से तो मैं कहता हूँ चाची कि मैं दलबन्दी का कुछ भी विचार न करूँगा; ब्राह्मण से लेकर शूद्र तक सभी आदमियों को न्योता दे आऊँगा। किन्तु तुम्हारा हुक्म मिले बिना तो मैं ऐसा कर नहीं सकता। तुम हुक्म दो चाची।

चाची कुछ देर चुपचाप सोचती रहीं। फिर बोलीं—इस तरह की आशा तो मैं दे नहीं सकती रमेश ! उसमें बड़ी गड़बड़ी होगी। इधर मैं तेरी बात को भी ग़ैरवाजिब नहीं कह सकती। पर यह तो वाजिब-ग़ैर-वाजिब की बात नहीं है भैया ! समाज ने जिसे दण्ड देकर अलग कर रखा है, उसे ज़बरदस्ती बुलाकर लाया नहीं जा सकता। समाज चाहे जैसा हो, उसे मानना ही पड़ेगा; नहीं तो उसमें भलाई करने की कोई शक्ति ही नहीं रह जाती। ऐसी स्थिति में तो किसी तरह काम नहीं चल सकता रमेश !

सोच-विचारकर ध्यान देने से रमेश को इस कथन का युक्ति-सङ्गत होना स्वीकार ही करना पड़ता; किन्तु अभी-अभी वह बाहर इस समाज के शिरोमणि सिरधरा लोगों के षड्यन्त्र और नीचता का जो परिचय प्राप्त कर आया था वह, उसके हृदय के भीतर, अग्निशिखा की तरह जल रहा था। इसी कारण वह घृणा के साथ तत्काल ही कह उठा—इस गाँव का समाज कहने से जिनका बोध होता है वे धर्मदास और गोविन्द गांगुली वग़ैरह ही तो हैं न ? ऐसे समाज के हाथ में रक्ती भर भी क्षमता न रहना ही अच्छा है चाची।

चाची ने रमेश की गरमी पर ध्यान दिया, तथापि शान्त स्वर में बोलीं—केवल यही लोग समाज के नेता नहीं हैं रमेश, तुम्हारा बड़ा भाई बेनी भी समाज का मुखिया है।

रमेश चुप हो रहा । चाची ने फिर कहा—इसी से मैं कहती हूँ, इन लोगों की सलाह लेकर उसी के अनुसार काम करो रमेश । घर में पैर रखते ही इन लोगों के विरुद्ध होकर काम करना अच्छा नहीं है ।

विश्वेश्वरी ने कितनी दूर तक सोचकर यह उपदेश दिया था, तीव्र उत्तेजना के आवेश में रमेश ने यह नहीं सोचकर देखा । उसने कहा—तुमने आप अभी-अभी यह बात कही है चाची कि यहाँ देहात में अनेक कारणों से दलबन्दी हो जाती है । जान पड़ता है, उन कारणों में व्यक्तिगत जलन अथवा मनमैली ही सबसे बड़ा और प्रबल कारण है । इसके सिवा मैं जब, सच हो या झूठ, किसी तरह के किसी के अपराध अथवा कलङ्क की बात जानता ही नहीं तब किसी को निमन्त्रण न देकर उसका अपमान करना मेरे लिए अन्याय होगा ।

चाची ने ज़रा हँसकर कहा—अरे पगलें, मैं तेरी बड़ी हूँ, माता के समान हूँ । मेरी बात न मानना भी तो तेरे लिए अन्याय होगा ।

रमेश ने कहा—क्या करूँ चाची, मैंने सभी को निमन्त्रण देने का निश्चय कर लिया है ।

उसका दृढ़ सङ्कल्प (इरादा) देखकर विश्वेश्वरी के चेहरे पर अप्रसन्नता का भाव छा गया; शायद मन ही मन वे खीझ भी उठीं । बोलती—तो फिर मेरी आज्ञा लेने के लिए आना तुम्हारा एक बहाना है ।

चाची की खीझ पर रमेश का ध्यान गया; किन्तु वह विचलित नहीं हुआ । दम भर बाद धीरे-धीरे उसने कहा—मैं जानता था चाची कि जो अनुचित या अन्याय नहीं है, ऐसे मेरे काम में तुम प्रसन्न मन से मुझे आशीर्वाद ही दोगी । मेरा—

बात पूरी होने के पहले ही विश्वेश्वरी कह उठीं—किन्तु यह भी तो तुम्हें जानना चाहिए था रमेश कि मैं अपनी सन्तान के विरुद्ध न चल सकूँगी ।

इस बात से रमेश को चोट पहुँची । क्योंकि, मुँह से वह चाहे जो कहे, किन्तु न जाने किस कारण उसका सारा अन्तःकरण इस चाची के निकट सन्तान के समान स्नेह का दावा किये हुए था । अब उसने देखा

कि उसके इस दावे से बहुत ऊपर के स्थान पर चाची की अपनी सन्तान का दावा डटा हुआ है। उसने तनिक चुप रहने के बाद खड़े होकर दबे हुए अभिमान के स्वर में कहा—कल तक तो मैं यही जानता था चाची ! इसी कारण उस समय तुमसे कहा था कि जो हो सकेगा सो मैं अकेले ही कर लूँगा, तुम न आना। तुमको बुलाने का साहस भी मुझे नहीं हुआ था।

यह दबे हुए अभिमान का भाव चाची से छिपा नहीं रहा। किन्तु उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया। वे अँधेरे में चुपकी बैठी रहीं। दम भर बाद रमेश के जाने के लिए उद्यत होते ही उन्होंने कहा—अच्छा तो ज़रा ठहर जाओ भैया, तुम्हारे भण्डारे की चाभी ला दूँ।

भीतर से चाभी लाकर उन्होंने रमेश के पैरों के पास फेंक दी। रमेश कुछ देर तक सन्नाटे में खड़ा रहा, फिर गहरी साँस छोड़कर चाभी उठाकर धीरे-धीरे वहाँ से चल दिया। अभी, कुछ ही घण्टे पहले, उसने मन में कहा था कि मुझे डर किसका है, मेरे चाची तो हैं। किन्तु एक रात भी न बीतने पाई, उसे फिर साँस छोड़कर यह कहना पड़ा कि नहीं, मेरे कोई नहीं है। चाची ने भी मुझे छोड़ दिया।

४

बाहर अभी रमेश ने श्राद्ध करके छुट्टी पाई थी। आसन से उठकर वह अभ्यागत निमन्त्रित लोगों के साथ परिचित होने की चेष्टा कर रहा था; घर के भीतर निमन्त्रित जनों को भोजन कराने—पत्तलें डालने—की तैयारी हो रही थी, इसी समय कुछ शोर-गुल सुनकर रमेश जल्दी से भीतर जा पहुँचा। उसके साथ और भी कई आदमी चले आये।

भीतर रसोईघर के किवाड़ों के पास एक २५-२६ वर्ष की विधवा स्त्री सटपटाई हुई मुँह फेरे खड़ी है। दूसरी अधेड़ औरत उसे अपनी आड़ में किये खड़ी हुई है। क्रोध के मारे उसका मुखमण्डल और आँखें लाल

हो रही हैं। उसके चिल्ला-चिल्लाकर बोलने में आग की चिनगारियाँ निकल रही हैं। उसके साथ परान हालदार का भगड़ा छिड़ा हुआ है। रमेश को देखते ही उस अधेड़ स्त्री ने चिल्लाकर उससे पूछा—हाँ भैया, तुम भी तो गाँव के एक जमींदार हो। मैं पूछती हूँ, सारा दोष क्या इसी चोन्ती बाम्हनी की लड़की का है? हमारे सिर पर कोई नहीं है, इसलिए क्या चाहे जितनी दफ़े दण्ड दोगे? (गोविन्द को दिखाकर) इन्होंने मुखर्जी के घर में पेड़ लगाने के समय, जरीबाने के तौर पर, स्कूल के नाम से दस रुपए क्या मुझसे नहीं वसूल किये? अभी उस दफ़े गाँव में जब सब लोगों की तरफ़ से शीतलापूजा की तैयारी की गई थी तब मुझसे चार बकरों के दाम नहीं लिये गये थे? फिर उसी एक बात को लेकर और कितनी दफ़े तुम लोग मुझे दण्ड देना चाहते हो?

रमेश समझ न सका कि मामला क्या है। गोविन्द गांगुली बैठा हुआ था। वह इस विषय का निर्णय करने के लिए उठ खड़ा हुआ। एक बार रमेश की ओर और एक बार उस अधेड़ स्त्री की ओर देखकर गम्भीर स्वर में उसने कहा—ज्ञान्त मौसी, तुमने जब मेरा नाम लिया है तब मैं सत्य ही कहूँगा। किसी की खातिर करके अनुचित बात कहना गोविन्द गांगुली नहीं जानता, और इस बात को सारा गाँव जानता है। तुम्हारा प्रायश्चित्त भी हो गया है, और समाज की ओर से जरीबाना भी वसूल किया जा चुका है। यह मैं जानता हूँ। किन्तु तुम्हारी लड़की के काम-काज की रसोई में शामिल होने का हुक्म तो हम लोगों ने नहीं दिया है। हाँ, मरने पर हम उसे कन्धा ज़रूर देंगे, लेकिन—

बात पूरी नहीं हो पाई, बीच में ही ज्ञान्ता मौसी चिल्ला उठी—तुम्हारी लड़की जब मरे तब उसे कन्धे पर लादकर जला आना भैया, मेरी लड़की की फ़िक्र तुम्हें न करनी होगी। अच्छा गोविन्द, तुम अपने कलेजे पर हाथ रखकर बात क्यों नहीं करते? तुम्हारी छोटी भावज, जो इसी भण्डारे के भीतर बैठी पान लगा रही है, पारसाल डेढ़ महीने तक कौन काशीवास करके लौटी थी? उसका रङ्ग हल्दी के गाभे का सा क्यों हो गया था?

वह बेहद दुबली क्यों हो गई थी ? वह बड़े आदमियों की बड़ी बात थी ? बात न बढ़ाओ, मैं भी सब जानती हूँ ! ज्यादा छेड़ेगे तो सबके सामने कच्चा चिट्ठा कह सुनाऊँगी ! हमारे भी लड़के-बाले पैदा हुए हैं—हम सब पहचान सकती हैं । हमारी आँखों में धूल नहीं भोंक सकते !

गोविन्द आपे से बाहर हो गया । वह पागल की तरह क्षान्तमणि पर झपट पड़ा; बोला—तो फिर ले हरामज़ादी !

लेकिन 'हरामज़ादी' औरत तनिक भी नहीं डरी; बल्कि एक पग आगे बढ़कर हाथ नचाकर मुँह मटकाकर बोली—मारेगा क्या रे ! कहे देती हूँ क्षेन्ती बाम्हनी के मुँह लगने से वही मसल होगी 'ठग पकड़ने में गाँव उजाड़' (सारा गाँव ही ठग निकलेगा, कोई भला न निकलेगा) । मेरी लड़की तो रसोईघर के भीतर घुसने नहीं गई थी; खाली दरवाज़े तक गई थी । इतने में ही हालदार देवर क्यों नाहक उसका अपमान कर बैठा ? मैं पूछती हूँ, हालदार की समझिन के जुलाहे के साथ बदनाम होने की बात क्या कोई नहीं जानता ? मैं तो आज की नहीं हूँ जी ! और भी बतलाऊँ या इतना ही रहने दूँ ?

रमेश काठ का पुतला बना खड़ा था । भैरव आचार्य ने जल्दी से क्षान्त का हाथ पकड़ने का उपक्रम करके अनुनय के साथ कहा—रहने दे मौसी, अब और ज़रूरत नहीं है । ले सुकुमारी (क्षान्त की बेटी), उठ तो बेटी, मेरे साथ उस दालान में चलकर बैठ ।

इधर परान हालदार ने उठकर कंधे पर चादर डालते हुए सीधे खड़े होकर कहा—इन खानगियों को जो डर से निकाल बाहर न किया जायगा, तो मैं यहाँ जल-ग्रहण न करूँगा, यह कहे देता हूँ । गोविन्द ! काली-चरण ! जो अपने मामा का साथ देना चाहते हो तो बस उठ आओ । बेनी घोषाल ने पहले ही कह दिया था कि मामा, वहाँ न जाना । ऐसी खानगियों-नटनियों के सम्पर्क की बात अगर पहले से मालूम होती तो क्या मैं अपना धर्म देने, अपनी जाति नष्ट करने इस घर की चौखट पर पैर रखता ? काली ! उठ आओ ।

मामा के बार-बार बुलाने पर भी कालीचरण ने उठने का नाम न लिया। वह गरदन झुकाये जहाँ का तहाँ बैठा रहा। वह 'पाट' का राजगार करता है। चार-पाँच साल हुए, उसका कलकत्ता-निवासी एक गण्य-मान्य खरीदार मित्र उसकी विधवा छोटी बहन को लेकर चम्पत हो गया था। मामला छिपा हुआ न था। एकाएक सुसराल जाने और वहाँ से तीर्थयात्रा के बहाने से कुछ दिन अवश्य दबा रहा था। इतने आदमियों के सामने कहीं उसी दुर्घटना का इतिहास न ज्ञान्त मौसी कह उठे, इसी डर से काली अपना सिर नहीं उठा सका। किन्तु गोविन्द गांगुली के हृदय की जलन वैसी ही बनी थी। वह फिर उठ खड़ा हुआ, और चिल्लाकर कहने लगा—कोई कुछ क्यों न कहे, इस तरफ़ के समाज के मुखिया हैं बेनी घोषाल, परान हालदार और यदु मुखर्जी की लड़की रमा। उनको हम लोगों में से कोई छोड़ नहीं सकता! रमेश भैया ने समाज की राय लिये बिना इन दोनों औरतों को क्यों अपने घर में घुसने दिया, इसका जवाब मिले बिना हम लोगों में से कोई जल तक ग्रहण नहीं कर सकता।

देखते ही देखते पाँच-सात आदमी कन्धे पर चादर डालकर एक-एक करके उठ खड़े हुए। ये सब देहाती थे। सामाजिक मामलों में कहीं कौन चाल सबसे अधिक लाभजनक होती है, यह इन लोगों का अच्छी तरह मालूम था।

निमन्त्रित ब्राह्मणों में से जिसके जी में जो आया, जिसे जो समझ पड़ा, वह वही कहने लगा। भैरव और दीनू भट्टाचार्य दोनों रूआसे से होकर कभी ज्ञान्त मौसी और उसकी लड़की को और कभी गांगुली और हालदार को हाथ-पैर पकड़कर मनाने और शान्त करने में लगे हुए थे। जान पड़ने लगा, चारों ओर की इस गड़बड़ से सारा किया-धरा नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। किन्तु रमेश के मुँह से एक बात भी नहीं निकली। एक तो भूख प्यास के मारे इसका मुँह सूख रहा था, तबीयत ठिकाने न थी, उस पर अकस्मात् यह अचिन्तित घटना हो गई। मलिन

मुख लिये न जाने कैसे हतबुद्धि की तरह स्तब्ध होकर खड़ा हुआ वह सब देख रहा था ।

सबके सामने आकर विश्वेश्वरी ने पुकारा—“रमेश !” अकस्मात् पल भर में सभी की चकित विस्मित दृष्टि विश्वेश्वरी के चेहरे पर पड़ी । वे भगडारे से बाहर, किवाड़े के सामने, आकर खड़ी हो गई थीं । उनके सिर पर साड़ी का छोर पड़ा था, किन्तु मुँह खुला हुआ था । रमेश ने आश्चर्य के साथ देखा, उसकी चाची आप ही न जाने कब आ गई हैं— उन्होंने उसका त्याग नहीं किया । बाहर के लोगों ने देखा, यही विश्वेश्वरी हैं, यही घोषाल-परिवार की पुरखिन बड़ी बहू हैं !

देहात में शहर का सा कड़ा पर्दा नहीं है तथापि विश्वेश्वरी, बड़े घर की बहू होने के कारण हो या अन्य किसी कारण से हो, उम्र ढल जाने पर भी साधारणतः किसी मर्द के सामने नहीं निकलती थीं । अतएव आज सबको बड़ा विस्मय हुआ । जिन्होंने केवल उनके बारे में सुना था, आज से पहले कभी अपनी आँखों उन्हें देखा न था, वे उनके अद्भुत नेत्रों को देखकर एकदम सन्नाटे में आ गये । जान पड़ता है, वे एकाएक क्रोध के वश होकर ही सबके सामने निकल पड़ी थीं । सबके सिर उठाते ही वे फ़ौरन् खम्भे के पास आड़ में खिसक गईं । सुस्पष्ट और तीव्र स्वर में अपना नाम सुनकर रमेश का वह विह्वल भाव दृट गया । वह सामने की ओर बढ़ आया । चाची ने आड़ से ही खूब स्पष्ट और ऊँचे स्वर में कहा—गांगुली महाशय को डर दिखाने के लिए मना करके कहो कि मैंने सबको सादर निमन्त्रण करके बुलाया है; सुकुमारी का अपमान करने का उन्हें कोई प्रयोजन नहीं था । अपने काम-काज के घर में शोर-गुल करने, चिल्लाने और गाली-गलौज करने को मैं मना करती हूँ । जिन्हें इसमें कुछ असुविधा जान पड़े वे और कहीं जाकर बैठें ।

बड़ी बहू का यह कड़ा हुक्म सबने अपने कानों से ही सुन लिया । रमेश को खुद कुछ नहीं कहना पड़ा, नहीं तो वह कह न सकता । इस हुक्म का फल क्या हुआ, इसे वह खड़े होकर अपनी आँखों देख भी नहीं

सका। चाची को सारी ज़िम्मेदारी अपने सिर पर लेते देख वह उमड़े हुए आँसुओं को किसी तरह दबाकर तेज़ी के साथ एक कोठरी में जा घुसा। भीतर जाते ही उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। आज दिन भर वह अपने काम में बहुत ही व्यस्त था—कौन आया, कौन नहीं, इसकी कुछ ख़बर उसे न थी। किन्तु और चाहे जो आवे, चाची के आने की बात उसकी कल्पना से भी दूर थी।

जो लोग उठकर खड़े हो गये थे, वे भी धीरे-धीरे बैठ गये। केवल गोविन्द गांगुली और परान हालदार एँठे हुए जहाँ के तहाँ खड़े रहे। किसी आदमी ने भीड़ के भीतर से उन्हीं को उद्देश्य करके अस्पष्ट स्वर में कहा—बैठ न जाओ काका ! सोलह पूरियाँ और आठ 'सन्देश' कौन किसे खिला-पिलाकर साथ बाँध देता है दादा !

परान हालदार तो धीरे-धीरे बाहर चला गया; किन्तु आश्चर्य की बात है कि गोविन्द गांगुली सचमुच ही बैठ गया। परन्तु उसका मुँह फूला ही रहा, और खाने के लिए जब पत्तलें परोसी जाने लगीं तब परोसने की देख-भाल करने के बहाने सबके साथ भोजन करने के लिए पङ्क्त में वह नहीं बैठा। जिन्होंने उसके इस व्यवहार पर ध्यान दिया, उन्होंने समझ लिया कि गोविन्द सहज में किसी को नहीं छोड़ेगा।

इसके बाद और कुछ गोलमाल नहीं हुआ। ब्राह्मणों ने जितना जो कुछ खाया, आँखों से देखे बिना उस पर विश्वास करना कठिन है। भोजन के बाद खुदी, पटला, न्याड़ा, बूड़ी, आदि अनुपस्थित लड़के-लड़कियों के नाम से हर एक जो कुछ बाँधकर घर ले गया, वह भी थोड़ा न था।

सन्ध्या के उपरान्त काम-काज समाप्त हो चुका था, रमेश बाहरी दर-वाज़े के बाहर एक अमरूद के पेड़ के नीचे अनमना सा खड़ा था। उसका मन ख़राब हो रहा था। इतने में उसने देखा, दीनू भट्टाचार्य बाल-बच्चों को साथ लिये एक तरह से लोगों की आँख बचाकर निकला जा रहा था। पूरी-मिठाई की इतनी भारी पोटली उसके हाथ में थी कि बेचारा दोहरा हुआ जा रहा था। सबके पहले खेंदी (लड़की) की नज़र

रमेश पर पड़ी। उसने अपराधी की तरह सिट-पिटाकर खड़े होकर सूखे गले से कहा—बप्पा, बाबू खड़े—

लड़की-लड़के और बुड्ढा, सभी सिटपिटा से गये। छोटी लड़की के पूर्वोक्त वाक्य से ही रमेश ने सब हाल जान लिया। जो भाग जाने की राह होती तो रमेश आप ही भाग खड़ा होता किन्तु दूसरी राह न थी, इसलिए उसने आगे बढ़कर हँसते हुए पूछा—खेंदी, यह सब किसके लिए लिये जा रही है ?

छोटी-बड़ी पोटलियों के बारे में ठीक उत्तर खेंदी न दे सकेगी, इस आशङ्का से दीनू ने खुद सूखी हँसी के साथ कहा—महल्ले में छोटी जातिवालों के लड़के-बाले भी तो हैं भैया। यह जूटन ले जाकर थोड़ी-थोड़ी उन्हीं को दूँगा। हाँ भैया, बड़ी बहू को गाँव-घर के लोग माल-किन क्यों कहते हैं, उनका इतना आदर क्यों करते हैं, यह आज मुझे मालूम हो गया।

रमेश इसका कुछ उत्तर न देकर बुड्ढे के साथ-साथ फाटक के पास तक आकर एकाएक पूछ बैठा—अच्छा भट्टाचार्यजी, आप तो इस तरफ़ का सब हाल जानते हैं, इस गाँव में इतना ईर्ष्या-द्वेष क्यों है ?

दीनू ने मुँह से एक विचित्र आवाज़ करके दो-तीन बार गरदन हिलाकर कहा—हाय रे, भैया साहब, कुँयापुर में तो ग़नीमत है। खेंदी के मामा के यहाँ जो कुछ मैं देख आया हूँ वह तुमसे क्या कहूँ ! ब्राह्मण-कायथों के सब मिलाकर बीस घर से अधिक न होंगे, लेकिन गाँव में चार-चार दल मौजूद हैं ! हरनाथ विश्वास ने केवल दो विलायती अमर-ख तोड़ने के कारण, अपने सगे भानजे को जेल भेजकर छोड़ा ! भैया, सभी गाँवों का यही हाल है। इसके सिवा मुक़दमेबाज़ी करके सब एकदम चौपट हो रहे हैं ! खेंदी, हरिधन के हाथ से पोटली लेकर तनिक हाथ तो बदला ले बेटी !

रमेश—इसका क्या कोई उपाय नहीं है भट्टाचार्यजी ?

भट्टाचार्य—क्या उपाय है भैया, यह घोर कलिकाल है न !

भट्टाचार्य ने एक लम्बी साँस छोड़कर फिर कहा—हाँ, मैं एक बात कह सकता हूँ भैया। भिन्ना के लिए मैं बहुत जगह जाया करता हूँ, अनेक लोग मुझ पर कृपा करते हैं। मैंने अच्छी तरह देख लिया है कि तुम लड़कों और जवानों के मन में फिर भी कुछ दया-धर्म है; इन बूढ़े-बाढ़ों में तो बिलकुल नहीं है। ये लोग घात में कर पाते हैं तो दूसरे के गले पर पैर रखकर उसकी जीभ जब बाहर निकल आती है तभी छोड़ते हैं।

अब दीनू भट्टाचार्य ने विचित्र मुँह बनाकर इस तरह जीभ बाहर निकालकर दिखाई कि रमेश से हँसे बिना न रहा गया। लेकिन दीनू ने उस हँसी में साथ नहीं दिया। कहा—भैयाजी, यह हँसने की बात नहीं है; मैं बिलकुल सच कह रहा हूँ। मैं खुद भी बूढ़ा हो चुका हूँ—तुम तो अँधेरे में बहुत दूर चले आये भैया साहब !

रमेश—कुछ हर्ज नहीं। आप जो कह रहे थे, वह कहिए।

दीनू—कहाँ क्या भैया, हर एक गाँव का यही हाल है। यह गोविन्द गांगुली क्या कुछ कम चमार है ! इस पाजी के बाप के ऐसे कर्म थे कि उसका नाम ज़बान पर लाने में भी पाप होता है, प्रायश्चित्त करने की ज़रूरत होती है। जेन्त बाग्हनो ने कुछ भूठ थोड़े कहा—लेकिन सभी उसको डरते हैं ! जाल करने में, भूठी गवाही देने-दिलाने में, भूठा मुक़दमा बनाने में उसकी बराबरी करनेवाला दूसरा नहीं मिलेगा। बेनी बाबू का मुँह लगा है, इसी कारण कोई उसके खिलाफ़ एक बात भी ज़बान से नहीं निकाल सकता; बल्कि वही लोगों को जाति-बाहर करता रहता है।

रमेश देर तक और कोई प्रश्न न करके वृद्ध के साथ-साथ चलता रहा। क्रोध के मारे उसके शरीर में आग सी लग रही थी। दीनू आप ही कहने लगा—मेरी यह बात तुम देख लेना भैया, जेन्ती बाग्हनो का सहज में छुटकारा न होगा। गोविन्द गांगुली और परान हालदार, इन दो-दो बर्र के छत्तों को उसकाना क्या सहज बात है ! तुम चाहे जो कहो भैया, औरत बड़ी हिम्मत की है ! और हिम्मत क्यों न हो ? लैया बेचकर पेट पालती है, सभी के घर आती-जाती है, सबका हाल जानती है।

उसे छेड़ने से, उसके पीछे पड़ने से, कलङ्क की सीमा नहीं रहेगी—वह भगड़ाफोड़ किये बिना न मानेगी—यह मैं तुमसे कहे देता हूँ। अनाचार किस घर में नहीं है ? बेनी बाबू को—

रमेश ने डरकर रोकते हुए कहा—रहने दीजिए, बड़े दादा की चर्चा करने की कोई ज़रूरत नहीं।

दीनू शरमा गया। उसने कहा—ठीक है, उनकी चर्चा न चलाना ही अच्छा। मैं गरीब-दुखिया आदमी हूँ, किसी की बात कहने की मुझे क्या ज़रूरत ? कोई अगर जाकर बेनी बाबू के कानों तक पहुँचा दे तो मेरे घर में आग—

रमेश ने फिर रोककर कहा—भट्टाचार्यजी, आपका घर क्या अभी दूर है ?

दीनू ने कहा—नहीं भैया, बहुत दूर नहीं है, इसी बाँध के पास मेरी भोपड़ी है। किसी दिन अगर—

“आऊँगा क्यों नहीं, ज़रूर आऊँगा” कहकर रमेश ने लौटते-लौटते फिर कहा—कल सबेरे ही तो फिर आपके दर्शन होंगे किन्तु उसके बाद भी कभी-कभी मेरे यहाँ आप पधारिएगा।

रमेश लौट पड़ा। “चिरजीवी रहो ! अपने बाप के समान हो !” कहकर हार्दिक आशीर्वाद देता हुआ दीनू भट्टाचार्य बाल-बच्चों समेत अपने घर गया।

५

इस बस्ती में एकमात्र मधु पाल की परचूनी की दूकान थी। वह नदी-किनारे बाज़ार के एक सिरे पर पड़ती थी। दस-बारह दिन हो गये, लेकिन वह अपने हिसाब के बाक़ी दस रुपये नहीं ले गया। यह देख न जाने क्या सोचकर रमेश खुद ही एक दिन सबेरे उसकी दूकान की ओर चल पड़ा। मधु पाल ने आदर करके छोटे बाबू को बरामदे में

मोढ़ा डालकर बिठाया। छोटे बाबू के आने का कारण सुनकर वह आश्चर्य के मारे सन्नाटे में आ गया। जिसे देना है, वही आपसे लेनदार के घर ऋण चुकाने आवे, यह बात मधु पाल ने अपनी इतनी बड़ी उमर में कभी आँखों नहीं देखी थी, कानों से सुनी भी न थी। उससे बहुत सी बातें हुई।

मधु ने कहा—दूकान किस तरह चले बाबूजी? दो आने, चार आने, एक रुपया, सवा रुपया करके पचास-साठ रुपये के लगभग लोगों पर बाक़ी हो गये हैं। “अभी दिये जाता हूँ” कहकर लोग ले जाते हैं, मगर दो महीने में भी रुपये नहीं वसूल होने आते। कौन, बनर्जी हैं! कब आये? पैर छूता हूँ।

बनर्जी महाशय के बायें हाथ में एक लोटा था; पैरों के नाखूनों में, एड़ियों में, कीचड़ के दाग़ थे; कान में जनेऊ लिपटा हुआ था; दाहने हाथ में घुइयाँ के पत्ते में लिपटी हुई चार मछलियाँ थीं। उन्होंने फुफकार मारकर एक लम्बी साँस छोड़ी, फिर कहा—कल रात को आया हूँ। तमाखू तो पिलाओ मधू।

हाथ का लोटा नीचे रखकर और दूसरे हाथ की मछलियाँ सामने खोलकर बनर्जी ने कहा—सैरभी मछलीवाली की अक्किल तो देख मधू, चट से मेरा हाथ ही पकड़ लिया। यह कैसा समय आ गया है मधू! ये भला एक पैसे की मछलियाँ हैं? ब्राह्मण को ठगकर कितने दिन खा लेगी? औरत का सत्यानाश न हो जायगा?

मधु ने विस्मय प्रकट करके कहा—आपका हाथ पकड़ लिया?

क्रुद्ध बनर्जी ने एक बार चारों ओर देखकर उत्तेजित होकर कहना शुरू किया—सिर्फ़ ढाई पैसे उसके पहले के बाक़ी हैं, तो क्या इसी के लिए भरे बाज़ार में सबके सामने मेरा हाथ पकड़ लेना मुनासिब था? किसने नहीं देखा? मैदान से दिसा-फ़रागत होकर आया, नदी में हाथ-पैर धोये; सोचा, एक बार बाज़ार भी हो लूँ। हरामज़ादी टेकरी भर मछलियाँ लिये बैठी थी, मगर मुझसे बिना किसी सङ्कोच के कह बैठी कि

मछली एक भी नहीं बची महाराज, सब बिक गईं ! अरे मेरी आँखों में तू धूल भोंक सकती है भला ! ऊपर का ढकना भट से खोल डालते ही, देखता क्या हूँ, चट से चुड़ैल ने मेरा हाथ पकड़ लिया ! तेरे पहले के ढाई पैसे और आज का यह एक पैसा—कुल साढ़े तीन पैसे लेकर क्या मैं गाँव छोड़कर भाग जाता ? क्यों न मधू ?

मधु ने हाँ में हाँ मिलाकर कहा—यह भी कहीं हो सकता है ?

बनर्जी -- यही बात है । लेकिन अब गाँव में क्या किसी का कुछ दबाव रह गया है ? नहीं तो इस पष्ठी मछलीवाले (जिसकी वह स्त्री थी) के यहाँ धोबी-नाई वगैरह का जाना बन्द न कर दिया जाता ? घर का छप्पर काटकर उसका रहना मुश्किल न कर दिया जाता ? (एका-एक रमेश की ओर देखकर पूछा) ये बाबू कौन हैं मधू ?

मधु ने गर्व के साथ उत्तर दिया—हमारे छोटे बाबूजी के लड़के हैं । बड़े ही लायक हैं । मेरे उस दिन के हिसाब में दस रुपये बाक़ी थे, सो आप मेरी दूकान पर रुपये देने आये हैं ।

बनर्जी महाशय मछलियों के बारे में मछलीवाली की शिकायत करना भूलकर आश्चर्य से आँखें फाड़कर बोले—हैं, रमेश भैया हैं ? जीते रहे भैया । आते ही तुम्हारी तारीफ़ सुनी; अपने बाप का काम खूब धूमधाम से किया । इस तरफ़, इस तरह छकाकर कभी किसी ने लोगों को नहीं खिलाया-पिलाया । किन्तु खेद है कि मैं अपनी आँखों से न देख सका । दस-पाँच आदमियों के कहने में आकर कलकत्ते नौकरी करने गया था, सो वहाँ भङ्गी का हाल हो गया । आखिर लौट ही आना पड़ा ! छिः ! वहाँ भला कोई आदमी रह सकता है !

रमेश इस आदमी के मुँह की ओर ताकता रह गया । किन्तु दुकान में जो और लोग बैठे थे, उनके बनर्जी के कलकत्ता-प्रवास का इतिहास सुनने के लिए बड़ा कौतूहल हो आया । मधु ने तमाखू भरकर नारियल बनर्जी के हाथ में दे दिया, और पूछा—नौकरी तो वहाँ आपकी लग गई थी न ?

बनर्जी—लगती क्यों नहीं ? मैंने कुछ कोदौ देकर तो विद्या पढ़ी नहीं है ! मगर नौकरी लगने से क्या होता है । वहाँ रहा किससे जा सकता है ? जैसा धुआँ है वैसी ही कीचड़ ! घर से बाहर निकलकर अगर घोड़ागाड़ी-मोटर वगैरह से कुचलने से बचकर घर कुशल से लौट आओ तो समझो, बाप-दादा के बड़े पुण्य थे ।

मधु कभी कलकत्ते नहीं गया । एक बार गवाही देने उसे मेदिनीपुर जाना पड़ा था । सो शहर के नाम से एक बार मेदिनीपुर की सैर उसने अवश्य की थी । उसने बहुत ही आश्चर्य-चकित होकर कहा—आप कहते क्या हैं । ऐसी बात है ?

बनर्जी ने ज़रा हँसकर कहा—अपने रमेश बाबू से न पूछ देखो, मेरा कहना सच है या झूठ ! ना मधू, खाने को न मिले, छाती पर हाथ रखकर घर में पड़े-पड़े मर जाऊँ, वह अच्छा, लेकिन मेरे आगे कोई परदेस जाने का नाम न ले । कहने से तुम्हें विश्वास न होगा, वहाँ साग-भाजी, अमरख, केले का फूल और गाभा, पोदीना वगैरह तक मोल लेकर खाना पड़ता है ! खरीदकर ये चीज़ें भला तू खा सकेगा ? एक महीना हुआ है, इतने ही दिनों में पेट भर खाना न मिलने से बीमार चूहा बनकर लौटा हूँ । दिन-रात पेट गड़-गड़ करता है, छाती में जलन सी होती है, जी खराब रहता है । जब भागकर घर आया तब जान बची । ना बाबा, अपने गाँव में रहकर एक बखत खाना भी भला । न जुरेगा तो बाल-बच्चों का हाथ पकड़कर भीख माँग लाऊँगा । ब्राह्मण के लड़के के लिए इसमें कुछ लज्जा की बात नहीं है । लछुमी मैया मेरे सिर आँखों पर, किन्तु मैं तो यही कहूँगा कि परदेश किसी को न जाना पड़े !

बनर्जी का क्रिस्ता सुनकर जित समय सब लोग विस्मित होकर एक दूसरे का मुँह ताक रहे थे, उसी अवसर में, बनर्जी महाशय अपनी जगह से उठकर उस जगह पहुँचे जहाँ मधु की दुकान में तेल का भाँड़ा रक्खा था । जाते ही आपने भाँड़े के भीतर हाथ डाल दिया । बायें हाथ की हथेली में कोई छटाँक भर तेल लेकर आधा नाक के दोनों छेदों से

सुड़क लिया, कानों में डाल लिया और आधा सिर में लगाकर रगड़ते हुए बोले—देर हो गई, इधर से ही एक गोता लगाकर घर जाऊँ। हॉरे मधू, एक पैसे का नोन तो दे; पैसा उस बखत आकर दे जाऊँगा।

“फिर उस बखत !” कहकर अप्रसन्न मुख से मधु नमक देने के लिए उठा। बनर्जी ने गरदन आगे बढ़ाकर नमक का परिमाण देखा और फिर आश्चर्य तथा खीभ के स्वर में कहा—तुम लोगों को हो क्या गया है मधू ! यह तो तू थप्पड़ मारकर पैसा छीनने लगा है !

अब आगे बढ़कर बनर्जी ने अपने हाथ से एक मुट्ठा नमक निकालकर मधु के दिये हुए दोने में और डाल दिया और वह दोना उसके हाथ से झपट लिया। अब लोटा उठाकर रमेश की ओर देख मुसकिराते हुए बोले—इधर ही तो जाओगे भैया, चलो न बातें करते चले चलें।

“चलिए न” कहकर रमेश उठ खड़ा हुआ। मधु मोदी ने कुछ ही फ़ासले पर खड़े होकर करुण स्वर में कहा—बनर्जी महाराज, मैदे के दाम वे पाँच आने पैसे भी क्या इसी के साथ—

बनर्जी एकदम खफ़ा हो उठे। बोले—हॉरे मधु, दोनों बखत रोज़ सामना होगा; तुम लोगों की आँखों में क्या सील बिलकुल रही नहीं गया ! बाल-बच्चों को पालने-पोसने के इरादे से कलकत्ते आने-जाने में पाँच रुपये मेरे पानी में ही बह गये। इसी वक्त तुम लोगों को भी तगादा करने की सूझी है ! इसी को कहते हैं, किसी की जान जाय और कोई मौज करे ! भैया रमेश, इन लोगों का ढङ्ग देख लिया ?

बेचारा मधु संकोच के मारे झेंप गया। अस्पष्ट स्वर में कहने लगा—बहुत दिन के—

“बहुत दिन के ही दाम पड़े हैं तो इससे क्या ? इस तरह सभी मिलकर पीछे पड़ जायँ तो फिर गाँव में कैसे कोई रह सकता है ?”—कहकर एक तरह से खफ़ा होकर बनर्जी महाशय अपना सामान लेकर चल दिये।

रमेश के लौटकर घर में घुसते ही एक भले आदमी ने जल्दी से हाथ का हुक्का एक तरफ़ रखकर बिलकुल पैरों के पास आकर उसको

प्रणाम किया। इसके बाद उठकर कहा—मेरा नाम वनमाली पाडई है। आप लोगों के गाँव के स्कूल का हेड मास्टर हूँ। दो दिन आकर लौट गया, आपसे भेट नहीं हुई। इसी से कहता हूँ—

रमेश ने आदर करके हेड मास्टर को कुर्सी पर बिठाना चाहा किन्तु वे उसका अदब करके खड़े ही रहे। बोले—जी, मैं तो आप लोगों का नौकर हूँ।

मास्टर वृद्ध थे, इसके सिवा जाति कोई भी हो, एक स्कूल के शिक्षक थे। उनके इस अत्यन्त विनीत कुण्ठित व्यवहार से रमेश के मन में एक अश्रद्धा का भाव उत्पन्न हो उठा। मास्टर ने किसी तरह उसके सामने कुर्सी पर बैठना स्वीकार न किया। वे खड़े ही खड़े अपना वक्तव्य कहने लगे। इस तरफ़ के गाँवों में इस गाँव का स्कूल बहुत ही छोटा था, और मुखर्जी तथा घोषाल परिवारों के उद्योग से स्थापित हुआ था। ३०-४० के लगभग विद्यार्थी पढ़ते हैं। कोई-कोई लड़का दो-दो तीन-तीन केस के फ्रासले से भी पढ़ने आता है। थोड़ी-बहुत सहायता गवर्नमेंट से भी मिल जाती है। तो भी स्कूल का चलना कठिन हो रहा है। बचपन में रमेश ने भी इस स्कूल में कुछ दिन पढ़ा था, यह उसे याद हो आया। पाडई महाशय ने सूचित किया कि इस साल छप्पर की छुवाई न होने से अब की बरसात में स्कूल के भीतर कोई बैठ न सकेगा। लेकिन छप्पर के बारे में प्रबन्ध तो पीछे होने में भी हर्ज नहीं है, इस समय सबसे बढ़कर दुश्चिन्ता की बात यह है कि तीन महीने से मास्टरों को तनखाह नहीं मिली। अतएव घर का पैसा खाकर बेगार के तौर पर लड़कों को आकर पढ़ाना मास्टरों के लिए अब असम्भव हो रहा है।

स्कूल की चर्चा से रमेश एकदम सजग हो उठा। वह मन लगाकर मास्टर की बातें सुनने में लग गया। हेड मास्टर साहब को बैठक में ले जाकर वह एक-एक करके सब ख़बरें पूछने और सुनने लगा। स्कूल में चार मास्टर हैं। उनके कठिन परिश्रम करने के फल-स्वरूप हर साल दो के औसत से लड़कों ने मिडिल पास किया है। उन लड़कों का नाम-

धाम और सब ब्योरा मास्टर साहब को बर्ज़वान था—वे सब सुना गये । लड़कों से जो फ़ीस वसूल होती है उससे नीचे के क्लासों के दो मास्टरों की और सरकारी सहायता के धन से अन्य एक मास्टर की तनख्वाह किसी तरह दे दी जाती है । केवल हेड मास्टर की तनख्वाह गाँववालों से तथा अन्य बाहरी लोगों से चन्दा लेकर किसी तरह दी जाती है । यह चन्दा वसूल करने का भार भी मास्टरों के ही ज़िम्मे है । बेचारे तीन-चार महीने से लगातार घूम रहे हैं । एक-एक के दरवाज़े पर आठ-दस दफ़े चक्कर लगाकर भी सात रुपये चार आने से अधिक रक़म वसूल नहीं कर पाये !

यह सब सुनकर रमेश सन्नाटे में आ गया । पाँच-छः गाँवों के बीच यही एक स्कूल है । इन पाँच-छः गाँवों में तीन महीने से बराबर दौड़-धूप करके केवल सात रुपये चार आने ही वसूल हो पाये हैं !

“आपको क्या तनख्वाह मिलती है ?”

“रसीद तो देनी पड़ती है छुब्बीस रुपये की, लेकिन मिलते हैं तेरह रुपये पन्द्रह आने ही ।”

रमेश इस पहेली का अर्थ समझ न पाया—मास्टर का मुँह ताकने लगा । उसके भाव को समझकर मास्टर बोले—गवर्नमेंट का ऐसा ही हुक्म है । इसलिए छुब्बीस रुपये की रसीद लिखकर सब-इन्स्पेक्टर साहब को दिखानी होती है; नहीं तो सरकारी सहायता ही बन्द हो जाय । इस बात को सभी जानते हैं, आप किसी विद्यार्थी से पूछकर इस बारे में जान सकते हैं, मैं झूठ नहीं कहता ।

देर तक चुप रहकर रमेश ने पूछा—इससे छात्रों के सामने आपके सम्मान की हानि नहीं होती—उनकी नज़र में आप हेच नहीं ठहरते ?

मास्टर ने लजित होकर कहा—क्या करूँ रमेश बाबू ! बेनी बाबू तो इतना भी नहीं देना चाहते !

रमेश ने पूछा—स्कूल के कर्ता-धर्ता वही हैं क्या ?

मास्टर ज़रा हिचका, लेकिन करता क्या, बिना कहे काम न चलता । स्लाचार होकर स्वर धीमा करके उसने बतलाया कि सेक्रेटरी तो वही

हैं, लेकिन कभी स्कूल के नाम पर एक पैसा भी अपने पास से नहीं निकालते। जुग-जुग जियें यदु मुखर्जी की लड़की—सान्नात् लक्ष्मी का स्वरूप हैं—उनकी कृपा न रहती तो स्कूल कब का बन्द हो जाता। इस साल अपने स्वर्च से स्कूल का छप्पर छावा देने की आशा देकर भी उन्होंने न जाने क्यों एकाएक सारी सहायता बन्द कर दी है। इसका क्या कारण है, कोई नहीं कह सकता।

रमेश ने कौतूहल के मारे रमा के बारे में और भी कई प्रश्न करके अन्त में पूछा—उनका एक भाई भी तो इस स्कूल में पढ़ता है न ?

“जी हाँ, उसका नाम यतीन्द्र है। वह भी पढ़ता है।”

“स्कूल का समय हो गया। आज आप जाइए। कल मैं आपके स्कूल में आऊँगा।”

“बहुत अच्छा” कहकर एक बार फिर प्रणाम करके ज़बरन रमेश की चरण-रज मस्तक में लगाकर हेड मास्टर साहब बिदा हुए।

६

विश्वेश्वरी की उस दिन की वह बातचीत उसी दिन आस-पास के दस-पाँच गाँवों में फैल गई थी। बेनी ऐसी प्रकृति का आदमी था कि वह खुद किसी के मुँह पर कठोर या अप्रिय बात नहीं कह सकता था। इसी से वह मौसी को बुला लाया था। पुराने ज़माने में तत्काल नाग ने दाँत गड़ाकर—डँसकर—एक बहुत बड़े पीपल के पेड़ को जलाकर भस्म कर डाला था। ये मौसी भी शायद उसी तत्काल के खानदान की थीं, इनकी जीभ में वैसा ही विकट विष था। ये मौसी उस दिन सबेरे ही घर पर चढ़ाई करके जो विष उगल गईं, उससे विश्वेश्वरी का शरीर अगर जलकर खाक हो जाता तो कोई आश्चर्य न था। किन्तु शायद उनका रक्त-मांसमय शरीर काठ का बना न था, अथवा उस युग में वह पहले का ज़माना न था, इसी से उनका शरीर भस्म नहीं हुआ। विश्वेश्वरी ने

सारा अपमान चुपचाप सह लिया। वे जानती थीं कि यह अपमान उनके अपने पुत्र के ही द्वारा—उसी के इशारे से—हो रहा है। क्रोध के वश होकर किसी बात का जवाब देने में इस कर्कशा स्त्री के मुँह से सबके आगे उनके अपने ही लड़के की बात न ज़ाहिर हो पड़े, और वह रमेश के कानों तक न पहुँच जाय, इसी दारुण लज्जा के मारे विश्वेश्वरी आदि से अन्त तक चुपचाप काठ की पुतली बनी बैठी सब सुनती रहीं।

गँवई-गाँव में कोई बात छिपी नहीं रह सकती। रमेश को भी ख़बर मिली। उसे अपनी चाची के बारे में पहले से ही बड़ी भारी चिन्ता थी। उसको इस सम्बन्ध में, इसी बात पर, मा और बेटे के बीच कहा-सुनी होने की आशङ्का हो रही थी। किन्तु उसने यह कल्पना भी न की थी कि बेनी एक बाहरी व्यक्ति को घर में बुला लाकर उसके द्वारा अपनी माता का इस तरह अपमान करा सकता है। रमेश को जब इस घटना की ख़बर मिली तब एकाएक इस पर विश्वास करने को उसका जी न चाहा। इसके उपरान्त उसी क्षण उसके क्रोध की आग इतनी प्रचण्ड हो उठी मानो उसकी ज्वाला ब्रह्मरन्ध्र को विदीर्ण कर डालेगी। रमेश ने सोचा, चाची के घर दौड़ा जाय, और मुँह में जो आवे, वही कहकर बेनी को जी भरकर गालियाँ सुनावे। क्योंकि जो आदमी अपनी मा का इस तरह अपमान करा सकता है, उसका अपमान करने के बारे में किसी प्रकार का सोच-विचार करने की आवश्यकता नहीं। किन्तु तुरन्त ही ख़याल हुआ कि नहीं, यह नहीं हो सकता; इससे चाची के अपमान की मात्रा घटने की नहीं, बल्कि और भी बढ़ जायगी। उस दिन दीनू से और आज मास्टर साहब के मुँह से प्रशंसा सुनकर रमेश के मन में रमा के ऊपर श्रद्धा उत्पन्न हो गई थी। चारों ओर व्याप्त हो रही मूढ़ता और हज़ार तरह की कदर्य लुद्रता के भीतर, केवल एक चाची के हृदय को छोड़कर, सारे गाँव के ही अन्धकार में डूब जाने का दृढ़ विश्वास जिस समय रमेश को हो चुका था, उस समय इस मुखर्जी-परिवार के घर की ओर देखकर जो थोड़ा सा प्रकाश का आभास—वह चाहे जितना तुच्छ

और चुद्र हो—उसे मिला, उसी ने उसे बड़ा आनन्द दिया था । किन्तु आज फिर इस घटना (रमा की मौसी ने जो आकर विश्वेश्वरी का अपमान किया) ने उसके मन को रमा के विरुद्ध घृणा और धिक्कार के भाव से भर दिया । बेनी के साथ मिलकर इन दोनों औरतों (मौसी और उसकी बहन की लड़की रमा) ने आज यह बड़ा अन्याय किया है, यह विश्वास रमेश को हो गया । किन्तु इन दोनों औरतों के विरुद्ध होकर ही वह क्या कर सकता है, अथवा बेनी को ही इसका क्या दण्ड दिया जाय, इस बारे में सोचने पर भी रमेश को कुछ न सूझ पड़ा ।

इसी बीच एक घटना और हो गई । मुखर्जी-परिवार और घोषाल-परिवार के बीच कई जायदादों का अभी तक बटवारा नहीं हुआ था । आचार्य घराने के घर के पिछवाड़े एक छोटा-सा तालाब ऐसी ही जायदाद था, जिस पर दोनों हिस्सेदारों का अधिकार था । किसी समय यह तालाब बहुत बड़ा था; धीरे-धीरे सफ़ाई न होने के कारण पटते-पटते इस समय छोटी सी तलैया रह गई थी । पालने के लिए इसमें अच्छी मछलियाँ नहीं डाली जाती थीं—मछलियाँ उसमें रह भी नहीं गई थीं । उसमें कई, मागुर आदि जातियों की मछलियाँ—जो आप ही पैदा होती हैं—थोड़ी बहुत थीं ।

भैरव हाँफता हुआ दौड़ता आया । बाहर देवी के मन्दिर के पास-वाली दालान में बैठा हुआ गुमाश्ता, गोपाल सरकार, खाता लिख रहा था । भैरव ने धबराई हुई आवाज़ से कहा—गुमाश्ताजी, आपने अपना आदमी नहीं भेजा ? तालाब में मछलियाँ पकड़ी जा रही हैं !

गुमाश्ते ने कान में कलम खाँसकर सिर उठाकर पूछा—कौन पकड़वा रहा है ?

भैरव—और कौन पकड़वावेगा ! बेनी बाबू का नौकर खड़ा हुआ है, मुखर्जी के घर का पछैयाँ दरबान भी मौजूद है । मैं खुद देखे आ रहा हूँ । सिर्फ़ आपकी तरफ़ का कोई आदमी नहीं है । जल्दी भेजिए ।

गोपाल ने कुछ भी धबराहट या चञ्चलता नहीं प्रकट की । कह दिया—हमारे बाबू तो मांस-मछली खाते ही नहीं ।

भैरव—नहीं खाते तो क्या हुआ ? अपना हिस्सा तो लेना ही चाहिए ।

गोपाल—हम लोग तो यही चाहते हैं । बड़े बाबू होते तो वे भी अपना हिस्सा ले लेते । लेकिन रमेश बाबू का मिज़ाज और ही तरह का है ।

भैरव के चेहरे पर विस्मय के चिह्न देखकर, हँसते हुए, ज़रा व्यंग्य के साथ गोपाल ने फिर कहा—ये तो तुच्छ दो-चार सिक्की या मागुर मछलियाँ हैं, उस दिन हाट के उत्तर ओर का बड़ा भारी इमली का पेड़ कटवाकर दो हिस्से करके वे लोग अपने-अपने घर उठा ले गये, हमको एक लकड़ी की चिपठी भी नहीं दी । मैं बाबूजी को ख़बर देने दौड़ा आया । उन्होंने सब सुनकर सामने खुली हुई किताब से ज़रा सिर उठाकर मुसकिया दिया, और फिर पढ़ने लगे । मैंने पूछा—क्या करना होगा बाबूजी ? फिर उन्हें एक बार किताब से सिर उठाकर देखने की भी फुरसत नहीं मिली । बहुत जोर देने पर किताब बन्द करके रख दी और जम्हाई लेकर कहा—लकड़ी ! तो क्या और दूसरा इमली का पेड़ नहीं है ? मैंने कहा—हे क्यों नहीं; लेकिन जो हिस्सा न्याय से हमें मिलना चाहिए उसे हम क्यों छोड़ें ? कहीं कोई भी अपना हिस्सा छोड़ देता है ? रमेश बाबू फिर किताब खेलकर पाँच मिनट तक चुपचाप बैठे सोचते रहे । फिर बोले—यह तो ठीक है, लेकिन दो-एक तुच्छ लकड़ी के टुकड़ों के लिए लड़ना-भगड़ना मैं पसन्द नहीं करता ।

भैरव ने बहुत ही विस्मय प्रकट करते हुए कहा—कहते क्या हो ! यह कह दिया ?

गोपाल सरकार ने मुसकियाकर दो-एक बार सिर हिलाकर कहा—आचार्यजी, मैंने तो उन्हीं के भले के लिए कहा था, पर जब उन्होंने यों कह दिया तब मैं भी चुप रह गया । मैं उसी दिन से समझ गया कि ऐसे मामलों में मेरा कुछ कहना-सुनना बेकार है । इस घर की लक्ष्मी माता तारिणी घोषाल के साथ ही अन्तर्धान हो गई हैं ।

भैरव ने दम भर चुप रहने के बाद कहा—लेकिन यह तालाब तो मेरे घर के पिछवाड़े ही है । मुझे तो छोटे बाबू तक यह ख़बर पहुँचा ही देनी चाहिए ।

गोपाल ने कहा—अच्छा तो है महाराज, तुम जाकर छोटे बाबू से कह आओ। वे तो दिन-रात किताब पढ़ा करते हैं। इस तरह हर वक्त किताबें पढ़ते रहने और हिस्सेदारों को डरने से कहीं जायदाद की रक्षा हो सकती है? यदु मुखर्जी की लड़की रमा औरत की जाति है। वह तक सब हाल सुनकर हँसते-हँसते लोट जाती है! उस दिन गोविन्द गांगुली को बुलाकर मज़ाक उड़ाते हुए उसने कहा था—“रमेश बाबू से कह देना, अपनी जायदाद मुझे सौंपकर कुछ माहवारी बँधी रकम मुझसे ले लिया करें”—भला इससे बढ़कर लज्जा की बात क्या होगी?

क्रोध और दुःख के मारे मुँह बनाकर गोपाल अपना काम करने लगा। घर के भीतर कोई स्त्री तो थी ही नहीं। सबके लिए दरवाज़ा खुला रहता था। भैरव ने भीतर आकर देखा, रमेश सामने के बरामदे में एक टूटी हुई आराम-कुर्सी पर लेटा है। रमेश को उसके कर्तव्य कार्य के लिए उत्तेजना देने की मंशा से भैरव ने सम्पत्ति-रक्षा के सम्बन्ध में साधारण भूमिका बाँधकर ज्योंही आज की घटना का ज़िक्र छोड़ा त्योंही रमेश, घायल बाघ की तरह, गरजकर बोला—क्या, रोज़-रोज़ चालाकी?—भजुआ!

रमेश के इस अचिन्तित और बिलकुल अप्रत्याशित उग्र भाव को देखकर भैरव डर गया। यह चालाकी किसकी कही गई, इस बारे में वह कुछ निश्चय न कर सका।

भजुआ रमेश का नौकर है, गोरखपुर ज़िले का रहनेवाला है। अत्यन्त बलवान् और विश्वासी आदमी है। लाठी चलाना उसने रमेश से ही सीखा है। रमेश ने स्वयं लकड़ी चलाना सीखकर हाथ भाँजने के लिए इसको वह विद्या सिखाई है। भजुआ के आते ही रमेश ने उसे यही हुक्म दिया—जा, सारी मछलियाँ छीन ला। जो कोई रोके तो उसे भी बाल पकड़कर घसीट ला। अगर इस तरह उसे यहाँ ले आना सम्भव न हो तो कम से कम उसके दाँत तोड़ आना।

भजुआ तो यही चाहता था। वह अपनी तेल से तर लाठी लेने के लिए चुपचाप कोठरी की ओर चल दिया।

रङ्ग-ढङ्ग देखकर भैरव डर से काँप उठा। वह बङ्गाली ठहरा। उसके हृदय में इतना बल कहाँ! चीखने-चिल्लाने तक में तो वह बिलकुल नहीं डरता। किन्तु जब उसने देखा कि इस हट्टे-कट्टे ठिंगने पछाईही आदमी ने हुक्म सुनकर जवाब में कुछ नहीं कहा, केवल गरदन हिलाकर चल पड़ा, तब डर और दुश्चिन्ता के मारे भैरव का तालू तक सूख गया। उसने सोचा, जो कुत्ता भूँकता नहीं वह बड़ी विकट चोट करता है।

भैरव वास्तव में रमेश का शुभचिन्तक था। इसी से वह यह जताने आया था। सोचा था, अगर ठीक समय से कोई मौक़े पर पहुँच जायगा तो चीखकर-चिल्लाकर, डरा-धमकाकर, कुछ मछलियाँ घर लाई जा सकेंगी। इसमें भैरव ने खुद भी सहायता करना विचारा था। किन्तु यह तो कुछ नहीं हुआ; दूसरी ही तैयारी हो गई। गाली-गलौज या चीख-पुकार का तो किसी ने नाम ही नहीं लिया। मालिक ने एक बार हुमककर फ़ौजदारी का हुक्म दिया और नौकर चुपचाप तैयार हो गया। बिना कुछ कहे सीधा लाठी लेने चल पड़ा।

भैरव बेचारा ग़रीब आदमी था। फ़ौजदारी में शामिल होने का न तो उसमें साहस था और न इरादा ही। दम भर बाद ही भजुआ पके बाँस की लम्बी लाठी लेकर अपनी कोठरी से बाहर निकला। वह माथे से लाठी लगाकर दूर से ही रमेश को प्रणाम करके ज्योंही जाने लगा त्योंही अकस्मात् भैरव रो उठा। उसने रमेश के हाथ भरझोर पकड़कर भजुआ से कहा—अरे भजुआ, ठहर जा।—भैया साहब, मेरी जान बचाओ। मैं ग़रीब आदमी हूँ, यह भगड़ा हुआ तो मैं घड़ी भर भी जिन्दा न बचूँगा।

रमेश ने खीझकर अपने हाथ छुड़ा लिये। उसे बेहद विस्मय हुआ। भजुआ भी सन्नाटे में आ गया। वह घूमकर खड़ा हो गया और भैरव की ओर ताकने लगा। भैरव ने रुआसे स्वर में कहा—यह बात छिपी तो रहेगी नहीं भैया साहब! बेनी बाबू की कोप-दृष्टि में पड़ना और मौत के मुँह में जाना एक ही बात है। फिर मेरा जीते रहना कठिन

हो जायगा । मेरा घर-द्वार सब जलाकर राख कर दिया जायगा । ब्रह्मा-विष्णु भी आकर मेरी रक्षा न कर सकेंगे ।

यह सुनकर रमेश सन्नाटे में आ गया, गरदन झुकाये जहाँ का तहाँ बैठा रह गया । गोलमाल सुनकर गोपाल सरकार, खाता लिखना छोड़कर, भीतर खड़ा-खड़ा सब सुन रहा था । उसने धीरे-धीरे कहा—“बाबूजी, भैरव महाराज का कहना ठीक है ।” रमेश ने इसका भी कुछ उत्तर नहीं दिया । केवल हाथ के इशारे से भजुआ को अपने काम के लिए जाने की आज्ञा देकर वह आप वहाँ से उठकर भीतर चला गया । उसके हृदय के भीतर भैरव आचार्य के इस असीम भय के भाव और कातर उक्ति ने ऐसी उथल-पुथल मचा दी जिसको केवल अन्तर्यामी ने ही देखा ।

७

रमा ने अपने छोटे भाई से कहा—क्यों रे यतीन, तू तो खेल रहा है, स्कूल न जायगा ?

“स्कूल में आज और कल दो दिन छुट्टी है दिदिया !”

यह सुनकर मौसी ने अपने कुरूप मुख को और अधिक बिगाड़कर कहा—इस जले स्कूल में महीने में पन्द्रह दिन की छुट्टी हुआ करती है । तू ही ऐसी है, जो इस स्कूल के पीछे इतने रुपये खर्च करती है, मैं होती तो आग लगा देती !

मौसी अपने काम से चली गई ।

जो लोग सोलहों आने मिथ्यावादिनी कहकर मौसी को बदनाम किया करते थे वे ग़लती करते थे । ऐसी ही एक-आध सच्ची बात वह कह सकती थी, और आवश्यक होने पर कर भी सकती थी ।

रमा ने छोटे भाई को अपने पास खींचकर धीरे-धीरे पूछा—यह छुट्टी क्यों हुई है ?

यतीन दीदी की गोद से सटकर खड़े होकर बोला—स्कूल का नया छप्पर बनाया जा रहा है ! उसके बाद घर भर में चूना पोता जायगा,

सफ़ाई होगी। न जाने कितनी नई किताबें आई हैं; चार-पाँच टेबिल-कुर्सी, एक आलमारी, एक बहुत बड़ी दीवाल-घड़ी वगैरह सब सामान आया है। एक दिन चलके तुम भी देख न आओ दिदिया।

रमा ने अत्यन्त विस्मित होकर कहा—तू कहता क्या है रे ?

यतीन ने कहा—मैं सच कहता हूँ दीदी। रमेश बाबू आये हैं कि नहीं—वही यह सब कर रहे हैं।

बालक और भी न जाने क्या-क्या कहने जा रहा था, लेकिन सामने मौसी को आते देख रमा चटपट भाई को साथ लेकर अपनी कोठरी में चली गई। प्यार-दुलार करके, पास बिठाकर, पूछ-पूछकर रमा ने नन्हें से भाई के मुँह से रमेश और स्कूल के सम्बन्ध की बहुत सी बातें मालूम कर लीं। उसने यह भी सुना कि रमेश खुद रोज़ जाकर घण्टे दो घण्टे लड़कों को पढ़ाता है। एकाएक रमा पूछ बैठी—हाँ रे यतीन, वे तुझे पहचानते हैं ? बालक ने गर्व के साथ सिर हिलाकर कहा—हाँ।

रमा ने पूछा—तू उन्हें क्या कहता है ?

इस प्रश्न से यतीन ज़रा मुशकिल में पड़ गया। क्योंकि रमेश के साथ इतनी अधिक घनिष्ठता होने का सौभाग्य अथवा साहस आज तक उसे नहीं प्राप्त हो सका था। रमेश के आने पर बड़े प्रतापी हेड मास्टर साहब तक इस तरह दबक रहते हैं कि उसे देखकर छात्रों की मण्डली में बेहद भय और विस्मय छा जाता है। बोलने-चालने की तो बात ही नहीं, कोई लड़का रमेश के मुख की ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकता। किन्तु दीदी के आगे अपनी भीरुता स्वीकार करना भी तो सहज न था। लड़के अक्सर अपने मास्टरों को देखते थे कि वे रमेश को छोटे बाबू कहा करते हैं। वही याद आ जाने से इस समय रमा के भाई ने अपनी बुद्धि खर्च करके कह दिया—हम सब उन्हें छोटे बाबू कहा करते हैं। किन्तु उसके मुख का भाव और मुद्रा देखकर रमा सब समझ गई। उसने भाई को और भी ज़रा खींचकर छाती से लगा लिया और हँसते हुए कहा—छोटे बाबू कहने का कुछ काम नहीं, वे तो तेरे दादा हैं; भैया लगते

हैं ! बेनी बाबू को तू जैसे बड़े दादा कहता है वैसे ही उनको छोटे दादा नहीं कह सकता ?

विस्मय और आनन्द के आवेग से बालक चञ्चल हो उठा। बोला—
ऐं ! मेरे दादा होते हैं वे ? सच कहती हो न दिदिया !

“सच तो कहती ही हूँ रे”—कहकर रमा फिर ज़रा हँस पड़ी। अब तो यतीन को रोक रखना कठिन हो गया।

यह खुशी की ख़बर अभी अपने साथियों को सुना आने की धुन में लड़के की अजब हालत हुई। पर स्कूल बन्द होने के कारण उसकी इच्छा पूरी होना सम्भव न था। छुट्टी के ये दो दिन उसे किसी तरह गुज़ारने हो होंगे। परन्तु जो विद्यार्थी पास रहते हैं, कम से कम उन्हें तो अभी यह ख़बर सुनाई जा सकती है; उन्हें सुनाये बिना उससे कैसे रहा जायगा भला ? उसने एक बार फिर छुटपटाकर कहा—अब जाऊँ दीदी ?

“इस बख़्त भला तू कहाँ जायगा !” कहकर रमा ने भाई को पकड़कर बिठा रक्खा।

जाने न पाने से यतीन कुछ देर मुँह बनाये बैठा रहा। थोड़ी देर बाद अकस्मात् पूछ बैठा—अच्छा दिदिया, इतने दिन ये दादा कहाँ थे ?

रमा ने स्नेह-सरस स्वर में कहा—लिखने-पढ़ने के लिए बाहर परदेस में रहते थे। तू जब बड़ा हो जायगा तब तुझे भी इसी तरह परदेस में जाकर रहना पड़ेगा। क्यों रे यतीन, तू मुझे यहाँ छोड़ जाकर वहाँ रह सकेगा ?

अब रमा ने भाई को फिर प्यार के मारे खींचकर छाती से लगा लिया। बच्चा होने पर भी लड़के ने बहन के कण्ठस्वर में एक प्रकार के न जाने कैसे परिवर्तन का अनुभव कर लिया। वह विस्मय-विमूढ़ मुद्रा से बहन के मुँह को ताकने लगा। क्योंकि रमा यद्यपि अपने इस भाई को प्राणों से बढ़कर प्यार करती थी, तथापि उसके साथ बातचीत करने में या किसी प्रकार के व्यवहार में इस क्षण का जैसा विलक्षण आवेगमय उच्छ्वास कभी उसके पास न फटकने पाता था।

यतीन्द्र ने पूछा—छोटे दादा क्या सारी पढ़ाई समाप्त कर आये हैं दीदी ?
रमा ने वैसे ही स्नेह-कोमल कण्ठ-स्वर में उत्तर दिया—हाँ मैया,
उनकी पढ़ाई खतम हो चुकी ।

लड़के ने फिर पूछा—तुमने यह कैसे जान लिया दिदिया ?

प्रत्युत्तर में रमा ने केवल लम्बी साँस छोड़कर सिर हिला दिया ।
वास्तव में रमेश की विद्या-शिक्षा के सम्बन्ध में रमा या इस गाँव का और
कोई आदमी कुछ भी न जानता था । किसी को खबर न थी कि रमेश
ने कहाँ तक क्या पढ़ा है । यह भी नहीं कि रमा का अनुमान इस बारे
में सत्य ही निकलेगा, किन्तु न जाने किस तरह उसे निश्चय सा हो गया
था कि जो आदमी पराये लड़कों के लिखने-पढ़ने के लिए इतने थोड़े
अर्से के बीच ही इस तरह दत्तचित्त हो रहा है, वह स्वयं कदापि मूर्ख
नहीं हो सकता ।

यतीन ने फिर इस विषय की जिरह नहीं की । क्योंकि इसी बीच
अचानक उसके दिमाग में एक और प्रश्न उठ खड़ा हुआ । वह चट
पूछ बैठा—अच्छा दीदी, छोटे दादा हमारे घर क्यों नहीं आते ? बड़े
दादा तो रोज़ आते हैं ।

अकस्मात् उठ खड़ी होनेवाली किसी विकट व्यथा के समान ही यह
बालक का सहज प्रश्न रमा के शरीर में बिजली के वेग से दौड़ गया; फिर
भी हँसकर उसने उत्तर दिया—तू क्या उन्हें बुला नहीं ला सकता ?

“अभी जाऊँ दिदिया ?” कहता हुआ बालक फौरन उठ
खड़ा हुआ ।

“अरे पगले, तू तो तमाशा ही है !” कहकर रमा ने पल ही भर में
फुर्ती से हाथ फैलाकर भाई को रोक लिया । वास्तव में वह डर के मारे
व्याकुल हो उठी थी कि कहीं बालक जाकर रमेश को बुला न लावे ।

“खबरदार यतीन, ऐसा काम न करना ।” कहकर रमा ने भाई को
मानों पूरी ताकत से छाती से लगाकर चिपटा रक्खा । उसकी तेज़ी से
होनेवाली हृदय की धड़कन का स्पष्ट अनुभव करके यतीन—बालक होने

पर भी—बहुत ही विस्मित हो उठा, और बहन के मुँह की ओर देखकर चुप हो रहा। एक तो पहले कभी उसने बहन को ऐसा व्यवहार करते देखा न था, दूसरे जब छोटे बाबू को अपना छोटा दादा जानकर उसके मन की गति बिल-कुल दूसरे ही मार्ग में जा रही थी, तब उसकी बहन ने क्यों उसे रोका; रमेश के साथ घनिष्ठता बढ़ाने में उसे क्यों इतना भय हो रहा है: यह यतीन की समझ में नहीं आया। इसी समय मौसी का तीखा स्वर सुनाई पड़ा। वह पुकार कान में पड़ते ही रमा यतीन को छोड़कर चटपट उठ खड़ी हुई।

तुरन्त ही मौसी आकर दरवाजे के सामने खड़ी हो गई और बोली—मैंने समझा कि रमा तालाब में नहाने गई है। क्यों जी, आज एकादशी है तो क्या इतनी देर तक सिर में ज़रा सा तेल भी नहीं लगाना चाहिए? नहाना भी क्या मना है? चेहरा तो देख, सूखकर सेँठ हो गया है!

रमा ने ज़बरदस्ती की हँसी हँसकर कहा—तुम जाओ मौसी, नहाओ; मैं अभी आती हूँ।

मौसी—इतनी देर तो हो गई, अब और कितनी देर में जायगी? बाहर आकर देख, बेनी तालाब की मछलियों का हिस्सा बाँट करने आये हैं।

मछली का नाम सुनते ही यतीन दौड़ा गया। मौसी की नज़र बचाकर रमा ने आँचल से अपना मुँह पोंछ लिया। फिर उठकर वह उसके पीछे-पीछे बाहर आई। आँगन में बड़ा शोर-गुल हो रहा था। मछलियाँ कुछ कम न थीं। बड़े टोकरे भर होंगी। हिस्सा-बाँट करने के लिए बेनी खुद हाज़िर था। महल्ले के लड़की-लड़के सब साथ-साथ वहीं आकर भीड़ लगाये हल्ला-गुल्ला कर रहे थे।

ख़ासने की आवाज़ सुन पड़ी। उसके बाद ही “कौन-कौन मछलियाँ पकड़ी हैं बेनी?” कहते हुए लाठी खटकाते वृद्ध धर्मदास आ गये।

चेहरे पर अप्रसन्नता का भाव लाकर बेनी ने कहा—कहाँ! बहुत थोड़ी मछलियाँ मिली हैं।

अब धीमर को बुलाकर उससे बेनी ने कहा—देर क्यों कर रहा है रे? जल्दी से दो हिस्से कर क्यों नहीं देता?

धीमर हिस्से करने लगा ।

“क्या हो रहा है रमा बेटी ! बहुत दिन से आ नहीं पाया । सोचा, जरा बिटिया की खैर-ख़बर ले लूँ ।”—कहते हुए गोविन्द गांगुली ने भी दर्शन दिये ।

“आइए” कहकर रमा ने तनिक मुसकिया दिया ।

“इतनी भीड़ किस लिए है जी !”—कहकर गांगुली महाशय आगे बढ़ आये । एकाएक मछलियाँ देखकर आश्चर्य का भाव दिखाते हुए बोले—वाह ! इसी की भीड़ लग रही है ! मछलियाँ तो काफ़ी निकली हैं । जान पड़ता है, बड़े तालाब में जाल डलवाया था ?

इन प्रश्नों का उत्तर देना सभी ने व्यर्थ समझा । लोग मछलियों के बँटवारे में ही ध्यान लगाये रहे । थोड़ी ही देर में बँटवारा हो गया । बेनी ने अपने हिस्से की लगभग सभी मछलियाँ भूँवे में भरकर नौकर के सिर पर उठाकर रख दीं । अब वह धीमर से आँखों का इशारा करके अपने घर जाने का उद्योग करने लगा । उधर मुखर्जी-परिवार को उतनी मछलियों की ज़रूरत न जानकर रमा के ही हिस्से से, आये हुए गाँव-मोहल्ले के, सब लोग योग्यता और प्रतिष्ठा के अनुसार कुछ-कुछ मछलियाँ हथियाकर अपने-अपने घर को खिसकने लगे ।

इसी समय सब ने आश्चर्य के साथ देखा, रमेश घोषाल का वही नाटे कद का पछाँही नौकर अपने सिर से भी ऊँची मजबूत बाँस की लाठी हाथ में लिये एकदम आँगन के बीच आकर खड़ा हो गया ।

इस आदमी का चेहरा ऐसा रोबीला था कि सैकड़ों आदमियों की भीड़ में सबसे पहले उसी पर नज़र पड़ती थी, और एक बार नज़र पड़ने के बाद वह फिर भूलता न था । गाँव के बालक और बूढ़े, सभी उसको पहचान गये थे; उसके सम्बन्ध में सम्भव-असम्भव सभी तरह की विचित्र बातें धीरे-धीरे फैल गई थीं, और लोग उन ग़प्पों पर विश्वास भी करने लगे थे ।

इतने आदमियों के बीच उस आदमी ने कैसे रमा को ही मालकिन जान लिया, यह वही जाने । “माजी” को दूर से ही लम्बा सलाम करके

वह आदमी रमा के पास आकर खड़ा हो गया। उसका चेहरा चाहे जैसा हो, आवाज़ तो सचमुच बड़ी भयानक, बहुत ही भारी, भद्दी और भरीई हुई थी।

उसने और एक सलाम करके हिन्दी और बँगला मिली खिचड़ी भाषा में संक्षेप में जो कुछ कहा, उसका सारांश यही था कि वह रमेश बाबू का नौकर है और तालाब से निकाली गई मछलियों का तीसरा हिस्सा लेने आया है।

चाहे आश्चर्य के कारण हो, चाहे उस आदमी के उचित दावे के विरुद्ध कोई उत्तर न सूझ पड़ने के कारण हो, रमा एकाएक कुछ उत्तर न दे सकी।

रमेश के नौकर ने एकाएक गर्दन घुमाकर बेनी के नौकर से गम्भीर स्वर में कहा—अभी जाना मत।

बेनी का नौकर डर के मारे चार पग पीछे हट आया और खड़ा हो गया। कोई आधा मिनट गुज़र गया, किसी के मुँह से कोई शब्द न निकला। तब बेनी ने साहस से काम लिया; जहाँ खड़ा था वहीं से हिम्मत करके बोला—काहे का हिस्सा जी ?

भजुआ ने फ़ौरन् बेनी को सलाम करके अदब के साथ कहा—बाबूजी, आप क्यों बोलते हैं ? आपसे कुछ मतलब नहीं है।

मौसी बहुत दूर थी। वहीं से तीखी आवाज़ में झनककर कहने लगी—क्या है भैया, मारेगा क्या ?

भजुआ दम भर मौसी की ओर ताकता रहा। इसके बाद उसके फूटे घड़े की आवाज़ से मिलते-जुलते कण्ठ-स्वर की भयङ्कर हँसी घर भर में गूँज उठी। दम भर बाद हँसी रोककर, मानों स्वयं कुछ लज्जित होकर, भजुआ ने फिर रमा की ओर देखा और कहा—माजी !

भजुआ की बातचीत और व्यवहार में अतृप्त सम्मान का भाव दिखाई देने पर भी उसके भीतर एक प्रकार की अवज्ञा का सा आभास छिपा हुआ था। रमा इस बात को ताड़ गई। कम से कम उसने मन में ऐसी ही कल्पना कर ली। खीझकर उसने पूछा—तेरा बाबू क्या चाहता है ?

रमा की खीभ को लक्ष्य करके भजुआ एकाएक कुशित सा हो गया । इसी से भरसक अपने कर्कश स्वर को कोमल बनाकर उसने अपनी पूर्वोक्त प्रार्थना फिर सुना दी; किन्तु उसके ऐसा करने से क्या हो सकता था ? मछलियों का तो हिस्सा-बाँट पहले ही हो चुका था । वे लोगों में बाँट भी गई थीं । इतने आदमियों के सामने रमा अपनी हेठी नहीं बरदाश्त कर सकती थी । इसी से उसने कठोर स्वर में कहा—तेरे बाबू का इन मछलियों में हिस्सा नहीं है । कह दे जाकर, जो बन पड़े, कर ले !

“बहुत अच्छा माँजी !”—कहकर भजुआ ने तुरन्त एक लम्बा सलाम किया । फिर बेनी के नौकर को हाथ के इशारे से जाने की अनुमति देकर बिना कुछ कहे-सुने वह खुद भी जाने को तैयार हुआ ।

भजुआ के व्यवहार से घर में उपस्थित सभी को बड़ा आश्चर्य हो रहा था । इसी समय एकाएक घूमकर, रमा की ओर देखकर, हिन्दी-मिश्रित बँगला भाषा में उसने अपने स्वर की कर्कशता के लिए क्षमा-प्रार्थना करते हुए कहा—माँजी, लोगों से खबर पाकर बाबूजी ने मुझे तालाब के किनारे से मछलियाँ छीन लाने का हुक्म दिया था । बाबूजी या मैं, कोई मछली या मांस छूता भी नहीं । लेकिन (अपने विशाल वक्षःस्थल को हाथ से ठाँककर) बाबूजी का हुक्म तामील करने के लिए यह जान शायद आज मुझे तालाब के किनारे ही देनी पड़ती । रामजी ने बड़ी कृपा की, जो बाबूजी का गुस्सा उतर गया । उन्होंने मुझे बुलाकर कह दिया कि जाकर माँजी से पूछ आ, उस तालाब में मेरा हिस्सा है या नहीं ।

अब भजुआ ने बड़े अदब के साथ लाठी-सहित दोनों हाथ रमा की ओर उठाकर अपने मस्तक से लगाकर प्रणाम किया । फिर कहा—बाबूजी ने कह दिया है कि भजुआ, और कोई आदमी चाहे जो कहे, लेकिन मुझे विश्वास है कि माँजी की ज़बान से कभी झूठी बात न निकलेगी; वे कभी पराये हिस्से की चीज़ हाथ से न छुएँगी ।

हार्दिक श्रद्धा और सम्मान दिखाकर, बार-बार माथा झुकाकर, भजुआ चल दिया । उसके जाते ही बेनी औरतों की सी महीन आवाज़

मैं शेखी बधारता हुआ कहने लगा—इसी तरह बाबू साहब अपनी जाय-दाद सँभालेंगे ! मैं तुम्हारे आगे आज प्रतिज्ञा करता हूँ रमा कि आज से तालाब के एक घोंघे में भी रमेश को हाथ न लगाने दूँगा; समझीं ?

खुशी के मारे फूलकर बेनी हा-हा-हा-हा करके हँसने लगा; किन्तु रमा के कानों में उसकी एक भी बात नहीं पहुँची। “माजी की ज़बान से कभी झूठ बात न निकलेगी”—भजुआ का यह वाक्य उस समय रमा के कानों के भीतर एक साथ लाखों तालियों की तड़तड़ाहट के साथ मानों उसकी खोपड़ी के टुकड़े कर रहा था। रमा का गोरा-गोरा चेहरा दम भर के लिए लाल होने के बाद ही ऐसा फीका पड़ गया था मानों खून का एक भी बूँद न हो। उसे इतना ही होश था कि उसका यह मुँह किसी को दिखाने लायक नहीं रह गया। इसी से वह धोती के छोर को माथे पर और भी खींचकर तेज़ी के साथ वहाँ से चल दी।

८

“काकी !”

“कौन, रमेश ? आओ बेटा, भीतर आओ।”—कहकर विश्वेश्वरी ने चटपट एक चटाई बिछा दी। घर के भीतर पैर रखते ही रमेश चौंक पड़ा; क्योंकि काकी के पास जो औरत बैठी थी, उसका चेहरा देख न पड़ने पर भी, उसे रमेश ने पहचान लिया। वह रमा थी।

रमेश के हृदय में जलन पैदा हो गई। उसने सोचा, ये लोग मौसी के द्वारा अपमान करा देने में भी कुछ कसर नहीं रखते, और इधर अत्यन्त निर्लज्ज की तरह एकान्त में पास भी आकर बैठते-उठते हैं !

रमेश के यों अचानक आ पड़ने से रमा को भी कुछ कम असमझस नहीं हुआ; क्योंकि वह न केवल इस गाँव की लड़की ही है, बल्कि रमेश के साथ उसका सम्बन्ध इस तरह का है कि बिलकुल ही अपरिचित की तरह घूँघट काढ़ते भी उसे लजा लगती है, और मुँह खोले रहते भी नहीं

बनता । इसके सिवा उस दिन मछलियों के लिए अप्रिय घटना हो चुकी थी । इसी से सब पहलू बचाकर भरसक आड़ में मुँह छिपाकर रमा बैठ थी । रमेश ने भी दुबारा उसकी ओर नहीं देखा । मानों घर में दूसरा कोई आदमी है ही नहीं, इस ढङ्ग से वह उस चटाई पर जाकर आराम से बैठ गया और बोला—काकी !

“क्या है रमेश ? एकाएक ऐसी दुपहरी में क्यों आये ?”

“दोपहर को न आऊँ तो क्या करूँ ! और दूसरे वक्ता तो तुम्हारे पास ज़रा देर बैठ ही नहीं सकता । काम-काज से तुमको फुरसत ही कब मिलती है ?”

विश्वेश्वरी ने इसका प्रतिवाद न करके केवल मुसक़िरा दिया ।

रमेश ने तनिक हँसकर कहा—बहुत दिन हुए, बचपन में तुम्हारे पास बिदा माँगने आया था, आज फिर आया हूँ । शायद यही आखिरी बिदाई है काकी !

मुँह में हँसी की झलक रहने पर भी रमेश के कण्ठ-स्वर से, वेदना से दबे हुए हृदय की, ऐसी सुस्ती प्रकट हुई कि उससे दोनों सुननेवाली विस्मित और व्यथित होकर चौंक उठीं ।

“राम-राम ! तुम जुग-जुग जियो ! यह क्या बकते हो बेटा !”—कहते कहते विश्वेश्वरी की आँखों में आँसू छलक आये । रमेश ज़रा मुसक़िरा दिया ।

विश्वेश्वरी ने स्नेहाद्रि स्वर से पूछा—“क्या यहाँ तेरी तबीअत ठीक नहीं रहती भैया ?” रमेश ने अपने लम्बे-तढ़ंगे डील-डौल और मजबूत हाथ-पैरों पर दो-तीन बार नज़र डालकर कहा—काकी, यह पछाँह का पानी है । दाल-रोटी खाकर ये हड्डियाँ पली हैं । ये भला इतनी जल्दी शिथिल हो सकती हैं ? स्वास्थ्य तो मेरा ठीक है; किन्तु न जाने क्यों, अब यहाँ एक घड़ी भी टिकना मुझे भारू हो रहा है । जैसे गहरे पानी में गोते खाते-खाते किसी का दम घुटने लगे, वही हाल मेरा हो रहा है ।

रमेश की शारीरिक आरोग्यता की बात सुनकर विश्वेश्वरी ने निश्चिन्त होकर मुसकिराते हुए पूछा—बेटा, यह तो तेरी जन्मभूमि है। फिर यहाँ तू टिक क्यों नहीं पाता ?

रमेश ने सिर हिलाते हुए कहा—यह मैं नहीं कहना चाहता। मुझे मालूम है कि तुम सब कुछ जानती हो। विश्वेश्वरी ने क्षण भर चुप रहकर कुछ गम्भीर भाव धारण करके कहा—सब न सही, कुछ तो ज़रूर जानती हूँ। उसी से तो कहती हूँ रमेश, तेरा और कहीं जाना ठीक नहीं।

“ठीक क्यों नहीं है काकी ? यहाँ तो मुझे कोई नहीं चाहता।”

“कोई नहीं चाहता है, इसी खयाल से मैं तुम्हें कहीं भाग जाने न दूँगी। अभी तू दाल-रोटी खाकर पली हुई जिस अपनी देह की बड़ाई कर रहा था, वह क्या भाग जाने के लिए ही है ?”

रमेश चुप रह गया। आज सारे गाँव के विरुद्ध रमेश के हृदय में जो विद्रोह की आग जल उठी थी, उसका एक विशेष कारण कही जाने लायक एक घटना हुई थी। उसे सुनिए। गाँव का जो रास्ता सीधा स्टेशन को गया था वह, आठ-दस साल पहले, बरसाती पानी के वेग से एक जगह टूट गया था। तब से हर साल वह टूटा हुआ हिस्सा—गढ़ा—अधिक लम्बा-चौड़ा और गहरा होता रहा। अक्सर पानी भरा रहता है। उस जगह इस ओर से उस ओर जाने में सभी राहगीरों को हैरानी होती है। दूसरे मौसिम में तो किसी तरह पैर सँभाल-सँभालकर रखते हुए, कपड़े समेटकर, बड़ी सावधानी से लोग इधर से उधर चले भी जाते हैं; लेकिन बरसात में बेहद तकलीफ़ होती है। किसी साल बरसात में टूटे ताड़ के डोंगे के सहारे किसी तरह गिरते-पड़ते, हाथ-पैर तोड़कर, लोग उस पार पहुँचते हैं। किन्तु इतनी तकलीफ़ रहने पर भी गाँववालों में से आज तक किसी ने उसकी मरम्मत के लिए कोशिश नहीं की। मरम्मत करने में रुपये पैसे चाहिएँ। यह खर्च रमेश ने खुद अपने पास से न देकर चन्दे से करना चाहा; चन्दा उगाहने के लिए उसने आठ-दस दिन दौड़-धूप भी की; किन्तु किसी से आठ-दस पैसे भी न पा

सका। यही नहीं, आज सबेरे टहलने के लिए रमेश निकला था, रास्ते में सुनार की दूकान के भीतर इसी चन्दे की चर्चा चल रही थी। रमेश के कान में जो भनक पड़ गई तो वह बाहर ठिठककर सुनने लगा। उसने सुना, एक आदमी दूसरे से हँसकर कह रहा है—“तुम कोई एक पैसा भी न देना ! देखते नहीं, इस गढ़े की मरम्मत के लिए रमेश की ही ज़्यादा गरज़ है। बढ़िया जूते पहनकर मचमचाते हुए चलना चाहिए कि नहीं ! देख लेना, तुम लोग कुछ भी न दोगे तो वह खुद अपने पास से मरम्मत करा देगा। इसके सिवा इतने दिन जो वह न था तो क्या हम लोगों का स्टेशन जाना रुका हुआ था ?” एक दूसरे आदमी ने कहा—“ज़रा सबर तो करो जी ! चटर्जी कहते थे कि उस (रमेश) के सिर पर हाथ फेरकर शीतलाजी का मण्डप भी दुस्तुत करा लिया जायगा। खुशामद करके दो-चार बार बाबू-बाबू कह देने से ही सब काम सिद्ध हो जायगा।” जब से यह संवाद रमेश के कानों में पहुँचा तभी से उसके कलेजे में आग सी लगी हुई थी। इस समय काकी ने रमेश के इसी स्थान पर आघात किया। उन्होंने कहा—उस दूटे हुए रास्ते की मरम्मत के लिए तू जो चेष्टा कर रहा था उसका क्या हुआ ?

रमेश ने खीझकर कहा—वह कुछ नहीं होगा काकी ! कोई एक पैसा भी चन्दा न देगा।

विश्वेश्वरी ने हँसकर कहा—तो किसी के न देने से न होगा ! तुझे नानाजी की तो बहुत सी सम्पत्ति मिली है। रास्ते की मरम्मत तो तू अपने खर्च से ही करा सकता था।

रमेश एकदम आग हो उठा। बोला—रास्ते की मरम्मत मैं क्यों कराऊँ ? मैंने बिना समझे-बूझे यहाँ के स्कूल के लिए जो बहुत से रुपये खर्च कर डाले, उन्हीं के लिए अब मुझे बड़ा दुःख हो रहा है। यहाँ के किसी आदमी की भलाई के लिए कुछ न करना चाहिए।

अब रमा की ओर एक बार तिर्छी नज़र डालकर कहा—इन लोगों के लिए कुछ खर्च करो तो ये बेवकूफ़ समझते हैं; भलाई करने में समझते

हैं, भलाई करनेवाले की ही गरज़ ! इन्हें क्षमा करना भी महापाप है ।
ये समझते हैं कि डर के मारे पीछे हट गया ।

काकी ठहाका मारकर हँसने लगीं; किन्तु रमा की आँखें और चेहरा एकदम लाल हो उठा । रमेश ने बुरा मानकर कहा—तुम तो हँस रही हो काकी !

“हँसूँ न तो क्या करूँ ?” कहकर काकी ने एक साँस लेकर कहा—मैं तो कहती हूँ कि तेरा यहाँ रहना ही सबसे ज्यादा जरूरी है । तू खफ़ा होकर जन्मभूमि को छोड़कर जाना तो चाहता है, पर बता तो सही, यहाँ तेरे क्रोध करने लायक है ही कौन ?

ज़रा रुककर फिर कहा—आहा ! ये लोग कितने दुखी और कितने दुर्बल हैं, यह तू अगर जाने रमेश तो इन पर क्रोध करते तुझे आप लज्जा मालूम होगी । भगवान् ने दया करके जो तुझे यहाँ भेज दिया है, तो तू इन्हीं लोगों के बीच में रह भैया ।

रमेश ने कहा—किन्तु ये लोग तो मुझे चाहते नहीं हैं काकी !

काकी ने कहा—इसी से क्या तू समझ नहीं पाता भैया कि ये लोग तेरे बिगड़ने या खीझने के कितने अयोग्य हैं ? यही क्यों, तू चाहे जिस गाँव में जाकर देख आ भैया, सभी जगह का हाल एक सा ही है ।

एकाएक रमा की ओर देखकर वे कह उठीं—तुम तो अभी से गरदन झुकाये चुपचाप बैठी हो बेटी ! क्यों रमेश, क्या तुम भाई-बहनों में बोल-चाल नहीं है ? रमा, ऐसा न करो । इसके बाप के साथ तुम लोगों का जो कुछ झगड़ा-बखेड़ा था, सो सब उनकी मृत्यु के साथ ही समाप्त हो गया । उस मामले को लेकर तुम दोनों मन में मैल रखोगे तो किसी तरह काम नहीं चलेगा ।

रमा ने सिर झुकाये ही झुकाये धीरे-धीरे कहा—मैं मन में मैल नहीं रखना चाहती काकी । रमेश दादा—

अकस्मात् रमा का कोमल स्वर रमेश के गम्भीर गर्म कण्ठ-स्वर में दब गया । उसने खड़े होकर कहा—इस बीच में तुम न पड़ो काकी !

उस दिन किसी तरह इनकी मौसी के हाथ से तुम्हारी जान बच गई थी; अब आज अगर जाकर ये फिर उनको भेज दें, तो वे तुमको नेस्तनाबूद करके ही घर लौटेंगी।

बस, किसी तरह के वाद-प्रतिवाद की अपेक्षा न करके रमेश तेज़ी के साथ वहाँ से चल दिया।

विश्वेश्वरी ने ज़ोर से उसे पुकारते हुए कहा—जाना नहीं रमेश, मेरी बात सुने जा।

रमेश ने दरवाज़े के बाहर से ही उत्तर दिया—ना काकी, जो लोग अहङ्कार के मारे तुम तक को अपमानित करने का साहस कर सकते हैं, उनका पक्ष लेकर एक शब्द भी तुम न कहो।

विश्वेश्वरी के दूसरी बार कुछ अनुरोध करने के पहले ही रमेश वहाँ से चला गया। रमा विह्वल सी होकर कई क्षण तक विश्वेश्वरी के मुँह की ओर ताकती रही, इसके बाद रो पड़ी और बोली—यह कलङ्क मुझ पर क्यों लगाया जाता है काकी? मैंने क्या मौसी को ऐसा करने के लिए सिखा दिया था, या उनके इस काम के लिए मैं ज़िम्मेदार हूँ?

काकी ने अपने हाथ में रमा का हाथ लेकर स्नेह के साथ कहा—यह सच है कि तुमने उन्हें सिखला नहीं दिया था किन्तु उनके काम की कुछ न कुछ ज़िम्मेदारी तो तुम पर आती ही है बेटी!

रमा ने दूसरे हाथ से आँसू पोंछते-पोंछते रुँधे हुए अभिमान के साथ ज़ोर देकर अस्वीकार करते हुए कहा—मैं क्यों ज़िम्मेदार हूँ? मुझे तो इस बात की रत्ती भर भी ख़बर न थी काकी! फिर क्यों वे मुझे मिथ्या दोष लगाकर मेरा अपमान कर गये?

विश्वेश्वरी ने इस सम्बन्ध में कुछ बहस नहीं की। वे धीरे भाव से बोलीं—सब लोग तो भीतर की ख़बर जानते नहीं बेटी। किन्तु, यह मैं निश्चय के साथ कह सकती हूँ कि तुम्हारा अपमान करने की इच्छा रमेश की कभी नहीं है। तुम तो जानती नहीं हो बेटी, मैं गोपाल सरकार के मुँह से सुनकर यह अच्छी तरह जान गई हूँ कि तुम्हारे ऊपर

रमेश कितनी श्रद्धा और कितना विश्वास रखता था। उस दिन इमली का पेड़ कटवाकर जब तुम दोनों हिस्सेदारों ने उसके दो हिस्से करके आपस में बाँट लिये थे तब रमेश ने किसी की बात नहीं सुनी। उसका भी तो उस पेड़ में हिस्सा था। कहनेवालों के मुँह पर ही लड़के ने हँसकर यह जवाब दिया था कि कोई चिन्ता की बात नहीं, रमा जब मौजूद है तब मुझे वाजबी हिस्सा जरूर मिलेगा। रमा कभी पराई चीज़ हड़प कर जानेवाली औरत नहीं है। बेटी, मैं अच्छी तरह जानती हूँ, इतना भगड़ा-बखेड़ा हो चुकने के बाद भी तुम पर उसे इसी प्रकार का विश्वास था, अगर उस दिन तालाब के—

विश्वेश्वरी एकाएक बीच में ही रुक गईं। कुछ देर तक रमा के भुके हुए सूखे मुख की ओर एकटक देखते रहकर अन्त को उन्होंने कहा—आज एक बात तुमसे कहती हूँ बेटी ! ज़मीन-जायदाद की रक्षा करने का मूल्य चाहे जितना हो रमा, इस रमेश के प्राणों का मूल्य उससे अधिक—कहीं अधिक है। किसी के कहने से, किसी चीज़ के लोभ से तुम लोग रमेश के प्राणों को चारों ओर से आघात कर-करके नष्ट न कर डालना। मैं निश्चय के साथ तुमसे कहती हूँ बेटी, उससे देश की जो हानि होगी, उसकी पूर्ति फिर किसी तरह किसी वस्तु से न होगी।

रमा स्थिर होकर बैठी रही। उसने एक भी बात का प्रतिवाद नहीं किया। विश्वेश्वरी ने और कुछ नहीं कहा। दम भर बाद रमा ने अस्पष्ट धीमे स्वर में कहा—देर हुई, अब घर जाती हूँ काकी।

प्रणाम करके रमा चली गई।

६

काकी के घर से रमेश कितना ही क्रोध करके क्यों न चला आया हो, किन्तु घर पहुँचते-पहुँचते उसकी सारी गरमी ठण्डी पड़ गई। वह बार-बार कहने लगा—यह सीधी सी बात न समझकर मैं नाहक कष्ट पा रहा था !

चलकर देख लो । मेरे पास कुछ रहता तो क्या इस लड़के को, मरे हुए बाप की लाश यों ही अकेली डालकर, भीख माँगने ले आती ? आँखों से नहीं देखा तो कानों से तो सब तुम भी सुन चुके हो भैया । छः महीने से बराबर अपनी पूँजी इन्हीं दोनों जीवों के पीछे खपाती आ रही हूँ । घर के पास ही बाम्हन के बच्चे क्या खाने-पीने को तरसकर मरा करेंगे भैया ?

रमेश ने अनुमान से मानों अब कुछ-कुछ समझ लिया । तब गोपाल मुनीम ने खुलासा करके कहा—इस लड़के का बाप, द्वारका चक्रवर्ती, छः महीने से दमे में खाट पर पड़े कष्ट भोगते-भोगते आज सवेरे मर गया है । प्रायश्चित्त (वैतरणी का गोदान) न होने के कारण कोई लाश छूना नहीं चाहता । इस समय सबसे पहले वही प्रायश्चित्त कराने की बड़ी ज़रूरत है । कामिनी की मा ने इन छः महीनों में अपनी पूँजी बेच-बेचकर इस ब्राह्मण-परिवार के लिए खर्च कर डाली है । अब उसके पास भी कुछ नहीं है । इसी से इस लड़के को साथ लेकर आपके पास आई है ।

रमेश ने दमभर चुप रहकर पूछा—अब तो दो बजनेवाले हैं । जो प्रायश्चित्त न हुआ तो क्या लाश पड़ी ही रहेगी ?

गोपाल ने हँसकर कहा—उपाय ही क्या है बाबूजी ! शास्त्र के विरुद्ध काम तो हो नहीं सकता । इसमें महल्लेवालों को ही कोई क्या दोष दे आप ही बताइए । चाहे जैसे हो, मुर्दा पड़ा न रहेगा—जिस तरह हो, यह काम (प्रायश्चित्त) तो इन लोगों को करना ही होगा । उसी के लिए तो भीख माँगने निकले हैं । हाँ कामिनी की मा, और भी कहीं गई थी ?

लड़के ने मुट्ठी खोलकर एक चवन्नी और चार पैसे दिखलाये । कामिनी की मा ने कहा—यह चवन्नी मुखर्जी-घराने से मिली है और ये चार पैसे हालदारजी ने दिये हैं । चाहे जिस तरह हो, नव चवन्नियों से कम मैं तो हो न सकेगा । इसी से बाबूजी अगर—

रमेश ने बीच में ही रोककर कहा—तुम दोनों घर जाओ, अब कहीं जाने की ज़रूरत नहीं । मैं सब बन्दोबस्त करके आदमी भेजता हूँ ।

उनको बिदा करके अत्यन्त व्यथा-व्यञ्जक नेत्रों से गोपाल की ओर देखकर रमेश ने पूछा—आप जानते हैं, इस गाँव में ऐसे ग़रीब कितने लोग हैं ?

गोपाल ने कहा—दो-तीन घर होंगे, अधिक नहीं । द्वारका महाराज के पास भी मोटा खाने-पहनने का सुबीता था । पाँच-छः साल हुए, सिर्फ़ एक दरख़्त के लिए मुकद्दमेबाज़ी करते-करते द्वारका चक्रवर्ती और सनातन हाजरा, दोनों फ़कीर हो गये । (स्वर कुछ धीमा करके) बाबूजी, जो हमारे बड़े भैया (बेनी घोषाल) और गोविन्द गांगुली, दोनों जने इन ग़रीबों को शह पर चढ़ाकर इस तरह जुम्मा न देते तो यहाँ तक नौबत न पहुँचती ।

रमेश—मुकद्दमेबाज़ी के बाद क्या हुआ ?

गोपाल—उसके बाद दोनों फ़रीक़ैन की सारी जायदाद हमारे बड़े भैया ने ही रेहन रख ली थी । पारसाल सूद और असल मिलाकर उसकी अदाई के लिए उन्होंने जोर डाला, और आप ही दोनों की जायदाद ख़रीद ली । धन्य कहना चाहिए इस किसान की लड़की कामिनी की माँ को ! विपत्ति के समय इसने बाम्हन के साथ जो कुछ किया है, वह आजकल बहुत कम देखने को मिलता है ।

रमेश एक लम्बी साँस छोड़कर चुप हो रहा । अब गोपाल को लाश ले जाने और जलाने का सब बन्दोबस्त करने के लिए भेजकर वह मन में कहने लगा—तुम्हारी ही आज्ञा को मैंने शिरोधार्य किया काकी ! यहाँ मर जाऊँ, सो भी अच्छा, किन्तु इस अभागे गाँव को छोड़कर और कहीं जाने की इच्छा कभी न करूँगा ।

१०

पूर्वोक्त घटना के तीन-चार महीने बाद एक दिन सवेरे के समय तारकेश्वर की जिस पुष्करिणी को 'दूध-पुकुर' कहते हैं उसी की सीढ़ियों के

ऊपर, एक औरत के साथ रमेश का बिलकुल पास ही सामना हो गया। क्षण भर तो वह ऐसे अभिभूत और अभद्र भाव से उस स्त्री के खुले हुए चेहरे की ओर ताकता खड़ा रहा कि उसे उसी दम रास्ता छोड़कर हट जाने का खयाल ही न आया। उस औरत की अवस्था बीस वर्ष से अधिक न होगी। वह स्नान करके ऊपर आ रही थी। चटपट उसने हाथ का भरा हुआ लोटा नीचे रख दिया और गीली धोती के नीचे दोनों हाथ छाती के ऊपर समेटकर, सिर झुकाकर, कोमल स्वर में पूछा—आप यहाँ कहाँ ?

रमेश के आश्चर्य की सीमा नहीं रही; किन्तु उसका वह विह्वल भाव दूर हो गया। एक ओर हटकर उसने पूछा—क्या आप मुझे पहचानती हैं ?

स्त्री—हाँ। आप तारकेश्वर कब आये ?

रमेश—आज ही सबेरे। मामा के घर से औरतें आनेवाली थीं; किन्तु वे अभी तक नहीं आईं।

स्त्री—आप यहाँ कहाँ ठहरे हैं ?

रमेश—कहीं नहीं। मैं पहले कभी यहाँ नहीं आया। किन्तु आज तो किसी तरह कहीं रहकर उनकी बाट जोहनी ही होगी। कहीं आश्रय खोज लूँगा।

स्त्री—साथ में कोई नौकर-चाकर है ?

रमेश—नहीं, मैं अकेला ही आया हूँ।

“आप भी खूब हैं !” कहकर उस औरत ने हँसकर एकाएक मुँह उठाया तो फिर दोनों की चार आँखें हो गईं। उस स्त्री ने नीची नज़र करके मन ही मन, जान पड़ता है, ज़रा टाल-मटोल करके अन्त को कहा—अच्छा तो मेरे साथ ही आइए।

लोटा उठाकर वह स्त्री आगे चलने को तैयार हो गई। रमेश सड़क में पड़ गया। उसने कहा—मैं चल सकता हूँ; क्योंकि इसमें दोष होता तो आप कभी मुझसे साथ चलने के लिए न कहतीं। मैं आपको पहचानता न होऊँ, यह बात भी नहीं है; किन्तु किसी तरह याद नहीं पड़ता। आप अपना परिचय दीजिए।

“अच्छा तो मन्दिर के बाहर तनिक ठहर जाइए, मैं पूजा कर लूँ । रास्ते में चलते-चलते अपना परिचय दूँगी ।”—कहकर वह औरत मन्दिर की ओर चली गई । रमेश मुग्ध की तरह देखता रहा । यह कैसी भीषण, उद्दाम यौवन की शोभा उस स्त्री के गीले कपड़े को फाड़कर बाहर निकली पड़ती थी ! उस स्त्री का चेहरा, गढ़न, उसका हर कदम रखना तक रमेश का परिचित था; लेकिन बहुत दिनों के बन्द स्मृति के किवाड़ों ने किसी तरह खुलकर उसके परिचय के मार्ग को सुगम नहीं किया ।

आध घण्टे बाद पूजा समाप्त करके वह स्त्री जब मन्दिर के बाहर आई तब एक बार फिर रमेश को उसका अनावृत मुख देख पड़ा । किन्तु फिर भी वह उसे न पहचान सका । रास्ते में चलते-चलते रमेश ने पूछा—आपके साथ कोई आत्मीय नहीं है ?

स्त्री—नहीं । एक दासी है, वह डेरे पर काम कर रही है । मैं अक्सर यहाँ आया करती हूँ । यहाँ की राह-गली सब मेरी जानी हुई हैं ।

रमेश—लेकिन मुझे आप क्यों साथ लिये जा रही हैं ?

स्त्री ने थोड़ी देर तक चुपचाप रास्ता चलने के बाद कहा—न ले चलूँ तो आपको खाने-पीने की तकलीफ होगी । मैं रमा हूँ ।

सामने बैठकर भोजन कराया, पान दिया, फिर विश्राम के लिए अपने हाथ से शतरञ्जी बिछाकर रमा दूसरी कोठरी में चली गई । उसी बिस्तर पर लेटकर आँखें मूँदे हुए रमेश को जान पड़ने लगा कि उसका यह तेईस वर्ष का जीवन, इतनी ही देर में, शुरू से आखिर तक बदल सा गया । लड़कपन से अब तक उसकी सारी आयु परदेस में पराये आश्रय में बीती है । भोजन करने में भूख मिटाने के सिवा, इससे अधिक और भी कुछ, किसी अवस्था में, रह सकता है, यह वह जानता न था । इसी से आज की इस अचिन्तनीय परितृप्ति में उसका सारा मन विस्मय और माधुर्य से शराबोर हो गया । रमा उसके भोजन के लिए यहाँ कुछ विशेष सामग्री नहीं जुटा पाई थी; बिल्कुल साधारण खाने-पीने की चीज़ों से उसने

रमेश का सत्कार किया था। इसलिए उसे बड़ी चिन्ता थी कि कहीं रमेश को खाने-पीने की चीज़ें अच्छी न लगें, और ग़ैर के आगे वह निन्दा का पात्र बने। हाय रे ग़ैर ! और हाय रे उनकी निन्दा !

रमेश का खाना-पीना ठीक-ठीक न होगा, इस बात की चिन्ता स्वयं रमा को कितनी अधिक थी; और उक्त चिन्ता ने उसके हृदय की सबसे भीतरी तह से अकस्मात् जाग्रत् होकर उसके सभी तरह के सङ्कोच और दुविधा को जोर से हटा दिया था और पास बैठकर खिलाने-पिलाने के लिए उसे रमेश के आगं ठेलकर भेज दिया था,—इस बात को आज वह किस तरह स्वयं अपने जी में प्रकट होने से रोकेगी। आज तो किसी प्रकार की लजा की बाधा उसे रमेश से दूर नहीं रख सकी। इस भोजन-सामग्री की स्वल्पता की त्रुटि को यत्न के द्वारा पूरी कर लेने के लिए ही वह रमेश के सामने आकर बैठी थी। रमेश के मज़े में भोजन कर लेने पर रमा के हृदय से जो गहरी तृप्ति और सन्तोष की साँस निकली, उसमें रमेश की अपनी तृप्ति से कितनी अधिक तृप्ति और सन्तोष था, इसे और किसी ने नहीं जाना सही, लेकिन जो सब जाननेवाले हैं उन अन्तर्यामी से कुछ छिपा नहीं रहा।

दिन में सोने का अभ्यास रमेश को न था। उसके सामने ही छोटी खिड़की के बाहर नई वर्षा के धूसर काले बादल से दोपहर का आकाश परिपूर्ण हो रहा था। अधखुली आँखों से रमेश वही दृश्य देख रहा था। उसे अपने आत्मीय लोगों के आने-न-आने का खयाल ही न था। एकाएक उसके कानों में रमा का कोमल स्वर पहुँचा। उसने दरवाज़े के बाहर खड़े होकर कहा—आज घर जाना तो हो न सकेगा, यहीं रह जाइए।

रमेश चटपट उठकर बैठ गया और बोला—किन्तु जिनका यह घर है उनसे तो अब तक मेरी भेट ही नहीं हुई। उनके कहे बिना कैसे रह जाऊँ ?

रमा ने उसी जगह खड़े-खड़े कहा—वही रहने के लिए कहते हैं। यह घर मेरा है।

रमेश ने विस्मित होकर पूछा—इस जगह तुमने घर क्यों ले रक्खा है ?

रमा—यह जगह मुझे बहुत पसन्द है । अक्सर आया करती हूँ । इस वक्त यहाँ लोगों की भीड़ अवश्य नहीं है; किन्तु कभी-कभी ऐसा समय होता है कि यहाँ तिल रखने को भी जगह नहीं रह जाती ।

रमेश—तो ऐसे समय न आया करो ।

रमा ने चुप रहकर ज़रा हँस दिया ।

रमेश ने फिर पूछा—जान पड़ता है, बाबा तारकनाथ पर तुम्हारी खूब भक्ति है । क्यों न ?

रमा—वैसी भक्ति होती कहाँ है ? किन्तु जब तक ज़िन्दगी है तब तक उसके लिए चेष्टा तो करनी ही होगी ।

रमेश ने और कुछ नहीं पूछा । रमा उसी जगह चौखट से भिड़कर बैठ गई । दूसरी बात छेड़कर उसने पूछा—रात को आप क्या खाते हैं ?

रमेश ने हँसकर कहा—जो मिल जाता है, खा लेता हूँ । खाने के लिए चौके में बैठने के पहले तक मुझे कभी खाने की बात याद ही नहीं आती । इसी से रसोइए महाराज की मर्जी पर ही सन्तुष्ट रहना पड़ता है ।

रमा—भला इतना वैराग्य क्यों है ?

रमेश कुछ ठीक समझ न सका कि रमा का यह प्रश्न छिपा हुआ व्यंग्य है या निरा सरल उपहास । उसने संक्षेप में जवाब दिया—नहीं, यह मेरा निरा आलस्य है ।

रमा—लेकिन पराये काम में तो मैं कभी आपको आलस्य करते नहीं देखती ?

रमेश—इसका कारण है । पराये काम में आलस्य करने से भगवान् के सामने कैफ़ियत देनी पड़ती है । अपने काम में भी आलस्य करने की शायद जवाबदेही करनी पड़ती है, किन्तु उतनी नहीं ।

रमा ने ज़रा चुप रहकर कहा—आपके पास रुपये-पैसे हैं, इसी से आप पराये काम में ध्यान दे सकते हैं; लेकिन जिनके पास रुपया-पैसा नहीं है वे क्या करें ?

रमेश—उनकी बात मैं नहीं जानता रमा; क्योंकि रुपये रहने की भी कोई तादाद नहीं है और ध्यान देने का भी कोई बँधा हुआ परिमाण नहीं। रुपये रहने न रहने का हिसाब वही जानते हैं, जिन्होंने इस लोक और पर-लोक का झिम्मा लिया है।

रमा ने दमभर चुप रहकर कहा—किन्तु पर-लोक की चिन्ता करने की अवस्था तो अभी आपकी हुई नहीं। आप मुझसे केवल तीन ही साल बड़े हैं।

रमेश ने हँसकर कहा—इसके मानी यह होते हैं कि तुम्हारी अवस्था तो और भी इस लायक अभी नहीं हुई। भगवान् यही करें, तुम बहुत दिनों तक जीती रहो; किन्तु मैं अपने सम्बन्ध में कभी यह नहीं सोचता कि आज ही मेरे जीवन का अन्तिम दिन नहीं है।

रमेश की इस उक्ति में जो छिपी हुई चोट थी वह शायद ख़ाली नहीं गई।

तनिक स्थिर रहकर रमा एकाएक पूछ बैठी—आपको मैंने कुछ पूजा-पाठ करते तो नहीं देखा! मन्दिर के भीतर क्या है क्या नहीं, यह नहीं देखा तो न सही; किन्तु खाने के लिए बैठते समय आचमन कर भोग लगाना भी क्या आप भूल गये?

रमेश ने मन ही मन हँसकर कहा—भूला तो नहीं हूँ, किन्तु भूल जाने में भी मैं कुछ हानि नहीं समझता। यह बात तुमने क्यों पूछी?

रमा—पर-लोक की चिन्ता आपको बहुत अधिक है न, इसी से पूछा।

रमेश ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। इसके बाद कुछ देर तक दोनों चुप रहे।

रमा ने धीरे-धीरे कहा—देखिए, मुझे बहुत दिन जीने के लिए कहना मानों शाप देना है। हम हिन्दुओं के घर में विधवा का बहुत दिन जीना कोई आत्मीय नहीं चाहता।

ज़रा देर चुप रहने के बाद रमा ने फिर कहा—मैं मरने के लिए कमर बाँधे बैठी नहीं हूँ, यह सच है; किन्तु बहुत दिन जीने की बात मन में आने

से भी हम विधवाओं को डर लगता है; परन्तु आपके सम्बन्ध में यह बात नहीं है। आप से ज़ोर देकर कुछ कहना मेरे लिए ठिठाई की बात है; किन्तु संसार में प्रवेश करके जब आपको पराये लिए माथा-पच्ची करना निरा लड़कपन जान पड़े, तब मेरी आज की यह बात याद कर लीजिएगा।

रमेश ने प्रत्युत्तर में केवल एक साँस छोड़ी। थोड़ी देर बाद रमा की तरह उसने भी धीरे-धीरे कहा—लेकिन मैं तुमसे खूब याद करके कहता हूँ, आज मुझे यह बात किसी तरह स्मरण नहीं आती। मैं तुम्हारा तो कोई नहीं हूँ रमा; उलटा तुम्हारी राह का काँटा हूँ। तो भी परोसी समझकर आज तुमने जैसा मेरा आदर-यत्न किया है, वैसा आदर-यत्न जो लोग इस संसार में प्रवेश करके अपने आदमी से पाते हैं वे, मुझे तो समझ पड़ता है, दूसरों का दुःख देखकर उसे दूर करने के लिए पागल की तरह दौड़ पड़ते हैं। अभी-अभी मैं अकेला बैठा सोच रहा था कि मेरे समग्र जीवन को आज तुमने मानों इतनी ही देर में आदि से अन्त तक बदल दिया। इस तरह आज तक किसी ने मुझसे खाने-पीने के लिए नहीं कहा, इस तरह आदर-यत्न करके किसी ने मुझको खिलाया-पिलाया भी नहीं। खाने-पीने में इतना आनन्द होता है, यह आज मुझे पहले-पहल तुम्हीं से मालूम हुआ रमा।

यह बात सुनने से रमा के सारे शरीर में रोमाञ्च हो आया। उसका शरीर बारम्बार काँप उठा; किन्तु उसने उसी दम सँभलकर कहा—इसे भूलते आपको बहुत दिन न लगेंगे। यदि कभी किसी दिन याद भी आवेगा तो यह घटना, ये बातें, अत्यन्त तुच्छ मालूम पड़ेंगी।

रमेश ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया।

रमा ने कहा—यदि गाँव में जाकर आप मेरी निन्दा न करें तो इसी को मैं अपना बड़ा भाग्य समझूँगी।

रमेश ने फिर एक निःश्वास छोड़कर धीरे-धीरे कहा—नहीं रमा, मैं निन्दा नहीं करूँगा; और प्रशंसा करता भी नहीं घूँमूँगा। आज का यह मेरा दिन निन्दा और प्रशंसा के बाहर है।

रमा ने कुछ प्रत्युत्तर नहीं दिया। थोड़ी देर बैठी रहकर वह वहाँ से उठकर अपनी कोठरी में चली गई। वहाँ सूने घर में उसकी आँखों से बड़े-बड़े आँसू टप् टप् करके गिरने लगे।

११

दो दिन लगातार पानी बरसता रहा; तीसरे पहर ज़रा पानी थमा। चण्डी-मण्डप में गोपाल मुनीम के पास बैठकर रमेश अपनी ज़मींदारी के कागज़-पत्र देख रहा था। अकस्मात् २०-२५ किसान आकर रोने लगे। बोले—छोटे बाबू, अबकी हम लोगों को बचा लीजिए। अगर आप न बचावेंगे तो हमें अपने लड़के-बालों का हाथ पकड़कर भीख माँगते फिरना पड़ेगा।

रमेश ने सन्नाटे में आकर पूछा—मामला क्या है ?

किसानों ने कहा—एक सौ बीघे का खेतों का मैदान पानी में डूब गया है। उसका पानी जल्दी न निकाल दिया गया तो सारी धान की फ़सल मारी जायगी बाबू साहब ! गाँव में एक घर के लिए भी खाने को कुछ न रह जायगा।

रमेश की समझ में बात अब तक नहीं आई। गोपाल ने किसानों से दो-एक प्रश्न करके सब जान लिया और रमेश को समझा दिया। यही सौ बीघे ज़मीन इस गाँववालों का एकमात्र आश्रय है। उसमें थोड़ी-थोड़ी ज़मीन सभी किसानों की है। इस मैदान के पूर्व ओर बड़ा भारी सरकारी बाँध है, पश्चिम और उत्तर ओर ऊँचे पर गाँव बसा है। केवल दक्षिण ओर का बाँध घोषाल और मुखर्जी-वंश का है। इसी ओर से पानी निकाला जा सकता है। किन्तु उक्त बाँध से मिला हुआ एक गहरा स्थान है, जिसमें सदा थोड़ा-बहुत पानी भरा रहता है और मछलियाँ रहा करती हैं। उसकी मछलियों की बिक्री से साल में दो सौ रुपये की आमदनी हो जाती है। इसी कारण ज़मींदार बेनी घोषाल ने

वहाँ पर कड़ा पहरा बिठा रक्खा है, जिसमें कोई बाँध काटकर वहाँ से पानी का निकास न करने पावे। किसान लोग आज सबेरे से बेनी के सामने धन्ना दिये पड़े थे। जब वहाँ कुछ न हुआ तब रोते-रोते उठकर वहाँ आये हैं।

रमेश ने और कुछ सुनने की आवश्यकता नहीं समझी—वह उठकर तेज़ी से चल दिया। बेनी के घर में जब वह पहुँचा तब सन्ध्या होने में अधिक देर न थी। बेनी घोषाल तकिये के सहारे बैठा तमाखू पी रहा था। पास ही हालदार भी बैठा हुआ था। जान पड़ता है, इसी बारे में बातचीत हो रही थी।

रमेश ने बिना ही भूमिका बाँधे कहा—पानी भरा हुआ है; मछलियों-वाली ज़मीन का बाँध रोक रखने से अब काम नहीं चल सकता; उसे अभी काट देना होगा।

हालदार के हाथ में हुक्का देकर बेनी घोषाल ने सिर उठाकर कहा—कौन सा बाँध ?

रमेश उत्तेजित होकर आया था। उसने क्रोध के साथ कहा—मछलियोंवाली ज़मीन का बाँध क्या कोई और भी है बड़े भैया ? वह न काटा जायगा तो सारे गाँव के धान नष्ट हो जायँगे। इसलिए वहाँ से पानी निकाल देने का हुक्म दे दीजिए।

बेनी ने कहा—पानी के साथ ही दो-तीन सौ की मछलियाँ भी निकल जायँगी, इसकी ख़बर है ? ये रुपये कौन देगा ? किसान लोग या तुम ?

रमेश ने क्रोध के वेग को सँभालकर कहा—किसान लोग ग़रीब हैं; वे तो दे ही न सकेंगे। रह गया मैं, सो समझ में नहीं आता कि मैं ही क्यों दूँ।

बेनी ने उत्तर दिया—तो फिर हमीं लोग क्यों इतना नुक़सान बैठे-बिठाये सहें, यह मेरी समझ में भी नहीं आता। इसके बाद हालदार की ओर देखकर कहा—चाचाजी, भैया साहब हमारे इसी तरह ज़मींदारी की रक्षा करेंगे।—अजी रमेश, ये हरामज़ादे किसान सबेरे से यहाँ अड़े हुए

ऐसे रो रहे थे जैसे उनके यहाँ ग़मी हो गई हो। मैं सब जानता हूँ। तुम्हारे दरवाज़े पर क्या दरबान नहीं है? उसके पैरों में क्या चमरौधा जूते नहीं हैं? जाओ, घर जाकर यही व्यवस्था करो। पानी आप ही निकल जायगा।

अब बेनी और हालदार दोनों, एक साथ ही-ही करके, अपनी रसिकता पर आप ही हँसने लगे।

रमेश के लिए अब और सहना असम्भव हो रहा था। फिर भी उसने प्राणपण से अपने को सँभालकर विनीत भाव से कहा—सोचकर देखिए तो बड़े भैया, हम तीन साझी हैं, तीन परिवारों के दो सौ रुपये का नुक़सान बचाने का फल यह होगा कि सैकड़ों ग़रीबों के साल भर के खाने का अन्न नष्ट हो जायगा। इस तरह उनकी पाँच-सात हज़ार की हानि हो जायगी।

बेनी ने हाथ को उलटकर कहा—हो जायगी तो हो जाय। उनके पाँच हज़ार रुपये नष्ट हों चाहे पचास हज़ार। मेरा सारा सदर खोदने से दो पैसे तक न निकलेंगे। फिर भैया, इन सालों के लिए दो-दो सौ रुपये कैसे मिटा दिये जायँ?

रमेश ने अन्तिम चेष्टा करते हुए फिर कहा—तो ये लोग साल भर खायेंगे क्या?

रमेश ने मानों एक बहुत ही हँसने की बात कही! बेनी ने एक बार इस तरफ़ और एक बार उस तरफ़ लुढ़ककर, सिर हिलाकर, हँसकर, खाँसकर, थूककर, अन्त में स्थिर होकर कहा—क्या कहा? खायेंगे क्या? देखना, साले अपनी अपनी ज़मीन गिरवी रखकर मुझसे ही रुपये उधार लेने दौड़े आवेंगे। भैया, दिमाग़ को ज़रा ठण्डा रखकर चलो। हमारे बड़े-बूढ़ों ने इसी तरह जायदाद बढ़ाई है। वे जो एक आध टुकड़ा जूटन छोड़ गये हैं उसी को बढ़ाकर खा-पीकर उसी में से थोड़ी-बहुत अपने लड़केबालों के लिए रख जाना होगा। ये किसान खायेंगे क्या? खायेंगे कर्ज़ लेकर। नहीं तो इन सालों को छोटी जात किसलिए कहा जाता?

धृणा, क्रोध और क्षोभ के मारे रमेश का चेहरा और आँखें लाल हो उठीं। किन्तु कण्ठ-स्वर को शान्त ही रखकर उसने कहा—आपने जब

कुछ न करने का पक्का इरादा कर रक्खा है तब यहाँ खड़े-खड़े आपसे बहस करना बेकार है। मैं अब रमा के पास जाता हूँ। उसकी राय मुझसे मिल गई, तो फिर अकेले आपके न मानने से कुछ न होगा।

बेनी के चेहरे का भाव बदल गया। उसने कहा—अच्छी बात है; वहाँ जाकर देख लेना, उसकी और मेरी राय एक ही है। वह साधारण औरत नहीं है भैया—उसे फुसलाना सहज नहीं है। तुम तो लड़के ही हो भैया, उसने तुम्हारे बाप के भी नाक में दम कर रक्खा था!—क्यों हालदार काका, है न यही बात?

काका की राय जानने के लिए रमेश को रत्ती भर भी कौतूहल न था। बेनी के इस अत्यन्त अपमानकर प्रश्न का उत्तर देने की भी उसे इच्छा न हुई। वह चुपचाप वहाँ से चल खड़ा हुआ।

आँगन में तुलसी के पेड़ के नीचे सन्ध्यासमय दीपक जलाकर प्रणाम करके रमा ने ज्योंही सिर उठाया त्योंही रमेश को देखकर वह विस्मय के मारे दङ्ग हो गई। ठीक सामने ही रमेश खड़ा था। रमा सिर पर का धोती का छोर गले से लपेटे हुए थी; मानों अभी रमेश को ही प्रणाम करके उसने सिर उठाया हो। क्रोध की उत्तेजना और रमा के मन का भाव जानने की उत्कण्ठा के मारे इस समय रमेश को रमा की मौसी की वह पहले दिन की इस घर में आने की मनाही याद ही न रही। इसी से वह सीधा भीतर चला आया था, और रमा को उस दशा में तुलसी की वन्दना करते देख चुपचाप खड़ा प्रतीक्षा कर रहा था। पहले परिच्छेद में वर्णित घटना के दो महीने बाद आज फिर दोनों की भेट हुई।

रमेश ने कहा—तुमने अवश्य सब हाल सुना है। बाँध काटकर मैदान का पानी निकाल देने के बारे में तुम्हारी मञ्जूरी लेने आया हूँ।

रमा का आश्चर्य का भाव जब दूर हो गया तब उसने सिर पर धोती का छोर ढालकर कहा—यह कैसे हो सकता है? इसके सिवा बड़े दादा इसके खिलाफ हैं।

रमेश—यह मैं जानता हूँ; लेकिन अकेले उनके खिलाफ होने से तो कुछ आता-जाता नहीं।

रमा ने ज़रा देर सोचकर कहा—पानो निकाल देना ठीक तो है; किन्तु मछलियों के रोकने का आप क्या बन्दोबस्त करेंगे?

रमेश—इतने पानी में उसका कुछ बन्दोबस्त नहीं हो सकता। इस साल इतने रुपयों की हानि हमें स्वीकार करनी होगी; नहीं तो गाँव भर के लोग भूखों मर जायेंगे।

रमा चुप रही। रमेश ने कहा—तो फिर तुम बाँध काटने की अनुमति देती हो?

रमा ने धीरे से कहा—नहीं। इतने रुपयों की हानि मैं न कर सकूँगी।

रमेश आश्चर्य के मारे हतबुद्धि सा हो गया। रमा से ऐसा उत्तर पाने की उसे किसी तरह आशा न थी। न जाने क्यों उसे निश्चित रूप से यह धारणा हो गई थी कि उसके इस एकान्त अनुरोध को रमा किसी तरह न टाल सकेगी।

रमा ने सिर उठाये बिना ही शायद रमेश के मन का हाल जान कर कहा—इसके सिवा जायदाद मेरे भाई की है, मैं तो उसकी देखरेख करती हूँ; मुझे अभिभावक मात्र समझिए।

रमेश—यह बात नहीं है; आधी के लगभग जायदाद तुम्हारी भी है।

रमा—कहने भर को है। पिताजी अवश्य ही जानते थे कि सारी जायदाद भाई यतीन ही पावेगा; इसी से आधी जायदाद मेरे नाम लिख गये हैं।

इस पर भी रमेश ने विनम्र अनुरोध के स्वर में कहा—रमा, ये रुपये हैं ही कितने? तुम्हारी स्थिति इधर सबसे अच्छी है। तुम्हारे लिए यह नुकसान कुछ नहीं है। मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ रमा, इतने रुपयों के लिए इतने लोगों को भूखों न मारो। मैं सच कहता हूँ, स्वप्न में भी मुझे खयाल न था कि तुम इतनी निठुर हो सकती हो।

रमा ने वैसे ही नम्र-कोमल भाव से उत्तर दिया—अपना नुकसान न कर सकने के कारण यदि मैं निठुर समझी जाऊँ तो उसे भी मैं अच्छा

समझूँगी। अगर आपको इतनी दया है तो आप ही क्यों न नुकसान की रकम दे दें।

रमा के कोमल स्वर की इस उक्ति को व्यङ्ग्य समझकर रमेश के आग सी लग गई। उसने कहा—रमा, आदमी की परख रुपये-पैसे के मामले में ही होती है। इस जगह धोखा-धड़ी या ढोंग नहीं चलता, इसी से इस जगह मनुष्य का सच्चा रूप प्रकट हो जाता है। तुम्हारा यथार्थ रूप आज इस मामले में प्रकट हो गया; किन्तु मैंने तुमको कभी ऐसा नहीं समझा। सदा से मैं इससे कहीं अधिक—बहुत ही अधिक ऊँचे पर तुम्हारा आसन समझता आ रहा हूँ। आज देखता हूँ, तुम वैसी नहीं हो। तुमको निष्ठुर कहना भी गलती है। तुम अत्यन्त नीच—बहुत ही ओले स्वभाव की—हो !

असह्य विस्मय से आँखें फैलाकर रमा ने कहा—मैं क्या हूँ ?

रमेश ने कहा—तुम अत्यन्त नीच और क्षुद्र हो ! मैं गरीबों का दुःख देखकर व्याकुल हो रहा हूँ, इसका पता पा जाने के कारण ही तुमने यह क्षति-पूर्ति कर देने की बात कही है ! किन्तु बड़े भैया (बेनी घोषाल) भी यह बात मुझसे नहीं कह सके। मर्द होकर भी जो बात वे अपने मुँह से नहीं निकाल सके वही बात स्त्री होकर तुम कह बैठी ! मैं इससे कहीं अधिक हर्जाना दे सकता हूँ। खैर, एक बात तुमसे आज कहे जाता हूँ रमा, संसार में जितने पाप हैं उन सबसे बड़ा पाप मनुष्य की दया पर अत्याचार करना है। आज तुमने वही करके मुझसे रुपये वसूल करने की चेष्टा की है।

रमा विह्वल और हतबुद्धि सी होकर रमेश की ओर ताकती रह गई। उसके मुँह से एक शब्द भी न निकल सका। रमेश ने वैसे ही शान्त, किन्तु दृढ़ स्वर से कहा—मेरी कमज़ोरी किस जगह पर है, यह तुमसे छिपा नहीं है, यह सच है; किन्तु उस जगह दबाव डालकर अब तुम एक बूँद भी रस नहीं पाओगी, यह मैं कहे जाता हूँ। साथ ही यह भी तुमको जताये जाता हूँ कि मैं अभी जाकर ज़बरदस्ती बाँध काट दूँगा। तुम लोगों से हो सके तो रोकने की कोशिश करो।

बस, रमेश चल दिया । उसको जाते देखकर रमा ने पुकारा । सुनकर रमेश लौट आया, और पास आकर खड़ा हो गया ।

रमा ने कहा—मेरे ही घर में आकर आपने मेरा जैसा अपमान किया, उसका मैं जवाब नहीं देना चाहती; किन्तु यह कहे देती हूँ कि बाँध काटने की हिम्मत हर्गिज़ न कीजिएगा ।

रमेश—क्यों ?

रमा—इतने अपमान के बाद भी आपसे मैं झगड़ा नहीं चाहती ।

रमा का चेहरा कैसा पीला पड़ गया था और पूर्वोक्त बात कहते समय उसके ओंठ कैसे काँप रहे थे, यह सन्ध्या के अँधेरे में भी रमेश ने देख लिया । किन्तु मनस्त्व की आलोचना का न तो उसे अवकाश ही था और न इच्छा ही थी । उसने फ़ौरन् जवाब दिया—लड़ाई-झगड़ा करने की तो मेरी इच्छा बिलकुल नहीं है; लेकिन तुम्हारे इस अपनपौ या सद्भाव का मूल्य अब मेरी दृष्टि में रत्ती भर भी नहीं है । खैर, बात बढ़ाने की अब आवश्यकता नहीं, मैं जाता हूँ ।

मौसी ऊपर ठाकुरद्वारे में जप कर रही थी, इसलिए उसे कुछ भी मालूम न हुआ । उसने नीचे उतरने पर देखा कि दासी को साथ लेकर रमा कहीं जा रही है, अतएव विस्मित होकर पूछा—इस कीचड़ के बीच शाम के बाद अँधेरे में तू कहाँ जा रही है रमा ?

“ज़रा बड़े दादा के पास जाऊँगी मौसी !”

दासी ने कहा—रास्ते में तो नाम लेने को भी कीचड़ नहीं है दीदीजी ! छोटे बाबूजी ने रास्ता ऐसा पक्का करा दिया है कि सेंदुर गिर पड़े तो साफ़ उठा लिया जा सकता है । भगवान् उनकी लाख बरस की उमर करें, ग़रीब-दुखी लोगों को साँपों के कष्ट से छुटकारा मिल गया ।

उस समय शायद रात के ग्यारह बजे होंगे । बेनी के चण्डी-मण्डप के भीतर बहुत से लोगों की फुसफुसाहट सुन पड़ रही थी । आकाश से बादल कुछ-कुछ ग़ायब हो चले थे । तेरस की धुँधली चाँदनी बरामदे के

ऊपर आकर पड़ रही थी। उसी जगह एक भयानक आकार का अधेड़ मुसलमान खम्भे के सहारे आँखें मूँदे बैठा हुआ था। उसके चेहरे पर ताज़ा खून जम रहा था, शरीर के कपड़े खून से तर थे; किन्तु वह चुपका बैठा था। बेनी दबे गले से खुशामद करके उससे कह रहा था—अकबर, मेरी बात सुन, थाने चला चल। सात साल की कैद उसे न करा दूँ तो मैं अपने बाप का बेटा ही नहीं। (पीछे की ओर देखकर) रमा, तुम भी एक बार अकबर से कहे न, चुप क्यों हो ?

रमा वैसी ही कठपुतली की तरह बैठी रही। अकबर अली ने अब आँखें खोलकर सीधे होकर कहा—शाबाश ! छोटे बाबू, तुमने बेशक अपनी माँ का दूध पिया है ! लाठी चलाना इसे कहते हैं !

बेनी ने घबराकर और क्रुद्ध होकर कहा—यही बात थाने पर कहने को तो मैं कही रहा हूँ अकबर ! किसकी लाठी से तू घायल हुआ है ! उस छोकरे की या उसके पछाँही नौकर की ?

अकबर के होठों पर ज़रा सी हँसी भलक गई। उसने कहा—उस नाटे पछाँही नौकर की लाठी से ? वह भला लाठी चलाना क्या जाने बड़े बाबू ! क्यों रे गौहर, तेरी पहली लाठी खाकर ही वह बैठ गया था न ?

अकबर के दोनों लड़के पास ही सिमटे बैठे थे। वे भी अछूते न बचे थे। गौहर ने सिर हिलाकर बाप की बात का समर्थन किया, मुँह से कुछ नहीं कहा।

अकबर कहने लगा—मेरे हाथ की लाठी खाकर तो वह ज़िन्दा ही न रहता। गौहर की ही लाठी खाकर “बाप रे !” कहकर वह तो बैठ गया बड़े बाबू !

रमा आकर थोड़े ही फ़ासले पर खड़ी हुई। अकबर उसी के पीरपुर गाँव का रहनेवाला किसान है। एक ज़माने में उसने लाठी के ज़ोर से बहुत सी जायदाद पर अपने ज़मींदार का क़ब्ज़ा करा दिया था। इसी से आज शाम के बाद क्रोध और खीभ से पागल-सी होकर रमा ने अकबर को बुलवाया और बाँध पर पहरा देने के लिए भेज दिया था। उसने

अच्छी तरह यह भी देख लेना चाहा था कि केवल उस पछाँही नौकर के भरोसे रमेश किस तरह क्या कर सकता है। रमा ने यह स्वप्न में भी न सोचा था कि रमेश खुद ही इतना बड़ा लठैत है।

अकबर ने रमा के मुख की ओर देखकर कहा—तब छोटे बाबू खुद उस नौकर की लाठी लेकर बाँध पर डटकर खड़े हो गये बेटी रानी, और हम तीनों बाप-बेटे उन्हें वहाँ से न हटा सके। अँधेरे में शेर की तरह उनकी आँखें चमक रही थीं। उन्होंने कहा—‘अकबर, तू बुड्ढा आदमी ठहरा, हट जा। बाँध न काटा जायगा तो गाँव भर के लोग भूखों मरेंगे, इसलिए इसे काटना ही होगा। अपने गाँव में तेरी भी तो ज़मीन-जायदाद है। मन में विचारकर देख भला, वह सब बर्बाद हो जाय तो तुझे कैसा मालूम होगा?’ मैंने सलाम करके कहा—अल्लाह की क़सम छोटे बाबू, तुम ज़रा सामने से हट जाओ। तुम्हारी आड़ में खड़े ये जो कई आदमी सिर पर कपड़ा लपेटे झड़ाझड़ा फावड़े मार रहे हैं, उनकी खोपड़ी फोड़ लेने दो।

बेनी अपने क्रोध को न सँभाल सका, बीच में ही चिल्लाकर कह उठा—बेईमान बज्जात कहीं के! उसे सलाम करके यहाँ चालाकी दिखाने आये हैं—

तीनों बाप-बेटों ने एक साथ हाथ उठाये! अकबर ने कड़ककर कहा—‘ख़बरदार! बड़े बाबू बेईमान न कहना। हम मुसलमान के लड़के हैं, सब कुछ सह सकते हैं—यह गाली नहीं सह सकते।’ माथे पर का थोड़ा सा रक्त हाथ से पोछकर उसने रमा से कहा—‘देखो बेटी रानी, बेईमान कहते हैं हमको! घर में बैठे-बैठे बेईमान कह रहे हो बड़े बाबू! आँखों से देखते तो जानते कि छोटे बाबू कैसे लठैत हैं!’

बेनी ने मुँह बनाकर कहा—‘छोटे बाबू कैसे लठैत हैं, यह थाने में जाकर बता न आ। कहना, तू वहाँ बाँध पर पहरा दे रहा था, छोटे बाबू ने चढ़कर तुझे मारा है।’

अकबर ने दाँतों से जीभ काटकर कहा—‘तोबा, तोबा! दिन को रात कहने के लिए कहते हो बड़े बाबू?’

बेनी ने कहा—तो और कुछ कह देना । आज जाकर अपने घाव दिखा आ न, कल ही वारण्ट निकलवाकर बचा को हवालात में बन्द करा दूँगा ।—रमा, तुम अच्छी तरह समझाकर अकबर से कहती क्यों नहीं हो ! ऐसा मौका फिर कभी सहज में हाथ न आवेगा ।

रमा ने कुछ नहीं कहा; एक बार आँख उठाकर अकबर के मुँह की ओर देख भर दिया ।

अकबर ने सिर हिलाकर कहा—ना बेटी रानी, यह मुझसे न होगा ।

बेनी ने धमकाकर कहा—होगा क्यों नहीं ?

अकबर ने अबकी और भी ऊँचे स्वर में कहा—कहते क्या हो बड़े बाबू, मुझमें क्या लाज-शरम नहीं है ? पाँच-छः गाँव के लोग क्या मुझे सरदार नहीं कहते ?—बेटी रानी, तुम्हारा हुकुम हो तो मैं मुजरिम बनकर जेल काट सकता हूँ; लेकिन नालिश करने किस मुँह से जाऊँ ?

रमा ने कोमल स्वर से एक बार इतना ही कहा—यह कर न सकोगे अकबर ?

अकबर ने जोर से सिर हिलाकर कहा—ना बेटी रानी, और सब कर सकता हूँ, लेकिन थाने या कचहरी में जाकर अपने बदन की चोट नहीं दिखा सकता ।—उठ रे गौहर, घर चलें । हम थाने में जाकर पिटने की रपट न लिखा सकेंगे ।

अकबर और उसके बेटे उठने लगे ।

क्रोध और निराशा की दृष्टि से तीनों की ओर देखकर बेनी, आँखों से आग बरसाकर, मन ही मन उन्हें अकथ्य गालियाँ देने लगा । रमा की इस अत्यन्त निव्वयम जड़ता का कुछ अर्थ बेनी की समझ में न आया । उसका हृदय भूसी की आग में जलने लगा ।

सब प्रकार के अनुनय-विनय, झिड़की, डाँट-डपट और क्रोध की परवा न करके अकबरअली जब अपने लड़कों के साथ बिदा हो गया तब रमा के हृदय को चीरकर एक गहरी लम्बी साँस निकली । बिना कारण उसकी आँखों में आँसू भर आये । आज उसका इतना बड़ा अपमान

होने, उसके सम्पूर्ण रूप से पराजित और निष्फल होने पर भी उसे क्यों रह-रहकर जान पड़ने लगा कि उसकी छाती के ऊपर से एक बड़ी भारी चट्टान का बोझ उतर गया, इसका कोई कारण उसे खोजने से भी नहीं मिला। उसे रात भर नींद नहीं आई। उसने जो उस दिन तारकेश्वर में रमेश को सामने बिठाकर खिलाया-पिलाया था, वही दृश्य लगातार उसकी आँखों के आगे नाचता रहा; और जितना ही उसे यह खयाल आने लगा कि रमेश के उस सुन्दर सुकुमार शरीर के भीतर इतनी दया, ममता और तेज इस तरह स्वच्छन्द रूप से शान्त भाव से भरा पड़ा था, उतना ही आँसुओं से उसका चेहरा भीगने लगा।

१२

बचपन में एक दिन रमेश ने रमा को प्यार किया था। वह प्यार बिलकुल बच्चों का लड़कपन था, इसमें सन्देह नहीं; किन्तु वह कितना गहरा था इसका अनुभव उस दिन तारकेश्वर में वह पहले-पहल कर पाया था। उस प्रेम के और भी अधिक गहरे होने का और भी अधिक पता उस दिन लगा, जिस दिन सन्ध्या के आँधरे में वह रमा के सारे सम्बन्ध को एकदम मिट्टी में मिलाकर उसके घर से चला आया था। उसके उपरान्त उस भयावनी रात की घटना के बाद से रमा का पक्ष ही रमेश के लिए एकदम महामरुस्थल के समान शून्य और नीरस हो रहा था। किन्तु रमेश ने यह कल्पना भी न की थी कि उसका यह काम अन्य सब कामों को, सोने-बैठने को, यहाँ तक कि सोचने-विचारने और पढ़ने तक को इस तरह बेमज्जा कर देगा। उस पर गृह-विच्छेद और सर्वव्यापी विरोध या ग़ैरियत के फेर में पड़कर जब वह ऐसा ऊब रहा था कि एक घड़ी भी इस गाँव में रहने को उसका जी न चाहता था, तब एक ऐसी घटना हो गई कि वह फिर सीधा हो बैठा—उत्साह से काम करने लग गया।

नहर के उस पार पीरपुर गाँव में रमेश वगैरह की ज़मींदारी थी। यहाँ मुसलमानों की ही बस्ती अधिक थी। एक दिन वे सब इकट्ठे होकर

रमेश के पास आये। उन्होंने यह कहकर रमेश को अपनी नालिश जताई कि यद्यपि वे सब उसी की प्रजा हैं तथापि उनके लड़के-बालों को, मुसलमान होने के कारण, गाँव के स्कूल में भरती नहीं होने दिया जाता। कई बार कोशिश करने पर भी कुछ नहीं हुआ। मास्टर लोग किसी तरह उनके लड़कों के पढ़ाने को राज़ी नहीं होते।

रमेश ने विस्मय और क्रोध के साथ कहा—ज़मींदारी में ऐसा अन्याय-अत्याचार होते तो मैंने कभी नहीं सुना। अपने लड़कों को तुम आज ही ले आओ। मैं खुद उनको भरती करा दूँगा।

उन मुसलमानों ने कहा कि यद्यपि वे रिआया हैं, लेकिन लगान देकर ही ज़मीन का उपभोग करते हैं। इसलिए हिन्दुओं की तरह ज़मींदार को नहीं दबते। परन्तु इस मामले में भगड़ा करने से भी कोई लाभ नहीं है; क्योंकि इससे उनका यथार्थ उपकार न होगा। बल्कि वे अपने लड़कों के लिए अलग एक छोटा सा स्कूल खोल लेना चाहते हैं। छोटे बाबू ज़रा सी सहायता करें तो सब काम बन जाय।

लड़ाई-भगड़े से रमेश खुद भी ऊब गया था, अतएव भगड़ा न बढ़ाने की उन लोगों की सलाह को ठीक समझकर उसने भी उसका समर्थन किया। उसी दिन से वह नया स्कूल खोलने के उद्योग में लग गया। इन मुसलमानों के संसर्ग में आकर रमेश ने केवल अपने को सुस्थ ही नहीं पाया, बल्कि एक साल से लगते-भगड़ते उसका जो बल क्षीण हो गया था, वह भी मानों पूरा होने लगा।

कुर्याँपुर के हिन्दू परोसियों की तरह ये लोग बात-बात में भगड़ा नहीं करते, और कर भी बैठते हैं तो हर बार अदालत में मुक़दमा दायर करने दौड़े नहीं जाते। बल्कि अपने सरपञ्चों के फ़ैसले को ही—सन्तुष्ट होकर हो चाहे असन्तुष्ट होकर—मानने की चेष्टा करते हैं। खास कर विपत्ति के समय परस्पर एक दूसरे की सहायता के लिए इन लोगों की तरह जी-जान से आगे बढ़ते रमेश ने उच्च या नीच, किसी हिन्दू गाँववाले को नहीं देखा।

जाति-भेद पर रमेश को योही किसी दिन श्रद्धा न थी, उस पर इन दोनों गाँवों की दशा का एक साथ मिलान करके जातिभेद पर उसकी श्रद्धा सौगुनी बढ़ गई। उसने तय किया कि हिन्दुओं में धर्म और समाज की विषमता ही इस परस्पर के डाह और द्वेष का कारण है। किन्तु हर एक मुसलमान धर्म में बराबर होता है, इसी से उनमें एकता का बन्धन जैसा पाया जाता है वैसा हिन्दुओं में नहीं; हिन्दुओं में वैसी एकता हो भी नहीं सकती। और, जातिभेद को हटाने का जब कोई उपाय नहीं है, यहाँ तक कि देहाती समाज के आगे इसकी चर्चा छेड़ना भी एक प्रकार से असम्भव है, तब उन हिन्दुओं में लड़ाई-भगड़ा कम करके मैत्री और प्रीति स्थापित करने का प्रयत्न ही व्यर्थ का परिश्रम है। अतएव इधर कई वर्षों से अपने गाँव की भलाई के लिए वह जो वृथा उद्योग करके मर रहा था, उसके लिए उसे बड़ा पछतावा होने लगा। उसे निश्चित प्रतीति हुई कि ये हिन्दू हमेशा से इसी तरह खँव-खँव करके लड़ते-भगड़ते चले आ रहे हैं, और सदा इनका यही हाल रहेगा। इनकी भलाई किसी दिन किसी तरह हो ही नहीं सकती! किन्तु बात पक्की तो कर लेनी चाहिए।

कई कारणों से, असें से, काकी के साथ उसकी भेट नहीं हुई थी। उस मारपीट के बाद से जान-बूझकर ही रमेश उधर नहीं गया। आज सबेरे उठकर वह एकदम काकी के घर के दरवाजे पर खड़ा हो गया। उनकी बुद्धि और जानकारी पर रमेश को इतना अटल विश्वास था कि उसका पूरा-पूरा पता खुद काकी को भी न था। रमेश ने तनिक विस्मित होकर देखा, काकी इतने तड़के ही नहा-धोकर तैयार होकर, उसी धुँधले प्रकाश में, घर के फ़र्श पर बैठी चश्मा लगाये कोई पुस्तक पढ़ रही हैं। रमेश को देखकर काकी को भी कम विस्मय नहीं हुआ।

विश्वेश्वरी ने किताब बन्द करके आदर-पूर्वक रमेश को बुलाकर पास बिठलाया, और उसके मुख की ओर देखकर पूछा—इतने तड़के ही आज कैसे आया रमेश ?

“बहुत दिनों से तुमको देखा नहीं था काकी । मैंने पीरपुर में एक नया स्कूल खोला है ।”

“यह मैं सुन चुकी हूँ । लेकिन यह तो बता, हमारे स्कूल में अब तू पढ़ाने क्यों नहीं जाता ?”

“वही तो कहने आया हूँ काकी । इन लोगों की भलाई की चेष्टा करना भूल मारना है ! जिनमें कोई किसी का भला देख नहीं सकता, जिनमें अभिमान और अहङ्कार इतना अधिक है, उनके बीच उनके हित के लिए जान लड़ाकर काम करना बिलकुल व्यर्थ है; लाभ तो कुछ नहीं, उलटे शत्रु पैदा हो जाते हैं । इससे जिनके हित की चेष्टा करने से सच-मुच कुछ भलाई होगी उन्हीं लोगों के हित का उपाय करूँगा ।”

“यह तो कुछ नई बात नहीं है रमेश ! संसार में लोगों के उपकार करने का बीड़ा जिस किसी ने उठाया है, उसके शत्रुओं की संख्या सदा बढ़ती रही है । इससे डरकर जो लोग अपना कर्तव्य छोड़ बैठते हैं, उनके दल में यदि तू भी जा मिलेगा तब तो फिर कुछ न होगा मैया ! यह भारी बोझा उठाने के लिए तुझे ही भगवान् ने दिया है, और तुझे ही यह अपने ऊपर लादना होगा ।—हाँ रमेश, तू क्या मुसलमानों के हाथ का पानी पीता है ?”

रमेश ने हँसकर कहा—यह देखो काकी, इसी बीच में यह बात तुम्हारे कानों तक पहुँच गई ! मैंने उन लोगों के हाथ का पानी अभी तो नहीं पिया है; लेकिन पीने में तो कुछ दोष नहीं है । मैं तुम लोगों के जातिभेद को बिलकुल नहीं मानता ।

काकी ने विस्मित होकर पूछा—नहीं मानता ! इसके मानी ? यह क्या भूठ बात है, या जातिभेद है ही नहीं, जो तू नहीं मानता ?

“यही बात पूछने आज मैं तुम्हारे पास आया था काकी ! जातिभेद का अस्तित्व तो मैं मानता हूँ, किन्तु इसे अच्छा नहीं समझता ।”

“क्यों ?”

रमेश ने एकाएक उत्तेजित होकर कहा—क्या यह भी तुमको बताना होगा ! यही जातिभेद तो मनोमालिन्य, सारे भगड़े-फ़साद और बुराइयों

की जड़ है, यह क्या तुम नहीं जानतीं ? समाज में जिसे छोटी जाति बनाकर रक्खा गया है वह बड़े—उच्च—को बुरी दृष्टि से देखता है, उससे जलता है; इस छोटा बनाये रखने के अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह करके उस बन्धन से छुटकारा पाना चाहता है। यह बहुत ही स्वाभाविक है। हिन्दू लोग संग्रह करना नहीं चाहते, वे तो फ़िज़ूल ख़र्च करना जानते हैं। अपनी और अपनी जाति की रक्षा करने और उसे बढ़ाने का जो एक सांसारिक नियम है, उसे स्वीकार न करने के कारण ही हम लोगों का नित्य क्षय हो रहा है। यह जो मनुष्य-गणना करने का नियम है, उसका फलाफल पढ़कर देखतीं काकी तो तुम डर के मारे सहम जातीं। मनुष्य को छोटा बनाकर उसके अपमान करने का फल हाथोहाथ पा जातीं। देखतीं कि किस तरह हिन्दू लोग नित्य घटते जाते हैं और मुसलमानों की संख्या बढ़ती जाती है। इतने पर भी तो हिन्दुओं को होश नहीं होता।

विश्वेश्वरी ने हँसकर कहा—तेरी इतनी बातें सुन लेने पर भी तो मुझे होश नहीं होता। तेरे जो लोग आदमियों को गिनते फिरते हैं, वे अगर गिनकर यह बता सकें कि इतने छोटी जाति कहलानेवाले लोगों ने, केवल छोटे होकर रहने के डर से ही, अपना धर्म छोड़ा है, तो शायद होश हो भी जाय। मैं जानती हूँ कि हिन्दू घटते जा रहे हैं; लेकिन इसका और कारण है। वह भी समाज की ही ग़लती है, किन्तु छोटी जातिवालों का धर्म छोड़ देना ही उसका कारण नहीं है। केवल छोटी जाति कहलाने के कारण ही कोई हिन्दू कभी अपना धर्म या अपनी जाति नहीं छोड़ता।

रमेश ने सन्देह के स्वर में कहा—किन्तु पण्डितों और पढ़े-लिखे लोगों का तो यही अनुमान है काकी !

विश्वेश्वरी—अनुमान के विरुद्ध तो बहस की नहीं जा सकती भैया ! हाँ, कोई ऐसी ख़बर दे सके कि फ़लों गाँव के इतने छोटी जाति के आदमी, अपनी जाति के कारण ही, अबकी साल अपना धर्म छोड़ बैठे हैं, तो शायद तेरे पढ़े-लिखों की इस बात को मैं सुन सकती हूँ। लेकिन मुझे यह अच्छी तरह मालूम है कि ऐसा समाचार कोई नहीं दे सकेगा।

रमेश ने फिर भी तर्क करके कहा—लेकिन जो लोग छोटी जाति के कहलाते हैं वे बड़ी जातिवालों से अनुचित ईर्ष्या करते हैं, यह तो मुझे ठीक ही जान पड़ता है काकी !

रमेश के तीव्र और उत्तेजना-पूर्ण वाक्यों को सुनकर विश्वेश्वरी फिर हँस उठी। उन्होंने कहा—यह ठीक नहीं है, तनिक भी ठीक नहीं है भैया ! यह देहात है, तुम्हारा शहर नहीं। देहात में यह सोचकर किसी के सिर में दर्द नहीं होता कि जाति में कौन छोटा है और कौन बड़ा। छोटा भाई जैसे अपने छोटे होने के लिए बड़े भाई से नहीं जलता, दो-एक वर्ष बाद पैदा होने के लिए उसके मन में जैसे कुछ भी क्षोभ नहीं होता, वही हाल देहात की छोटी जातियों का है। यहाँ कायस्थ इसलिए ज़रा भी दुखी नहीं होता कि वह ब्राह्मण क्यों न हुआ; नाई-बारी, मल्लाह वगैरह भी ब्राह्मणों या कायस्थों की बराबरी के लिए तनिक भी चेष्टा नहीं करते। बड़े भाई को सिर झुकाने या प्रणाम करने में छोटे भाई को जैसे लज्जा नहीं लगती, वैसे ही कायस्थ भी ब्राह्मण के पैर छूने में तनिक भी कुण्ठित नहीं होते। यह बात नहीं है, जो तुम समझे हुए हो भैया ! हिन्दुओं का जातिभेद ईर्ष्या-द्वेष का कारण नहीं है—कम से कम हिन्दुओं का केन्द्र या मेरुदण्ड जो देहात हैं, उनमें तो बिलकुल ही नहीं।

रमेश ने मन ही मन विस्मित होकर कहा—तो फिर ऐसा क्यों होता है काकी ! इस गाँव में तो मुसलमानों के इतने घर हैं, उनमें परस्पर ऐसा झगड़ा नहीं होता देख पड़ता। मुसलमानों में तो एक आदमी दूसरे आदमी को विपत्ति के समय, हिन्दुओं की तरह, और भी नहीं सताता—उसका गला घोटने की कोशिश नहीं करता। अभी उस दिन की बात है, पैसा पास न होने के कारण द्वारका महाराज को मृत्यु के समय प्रायश्चित्त (वैतरणी का गोदान) नहीं कराया जा सकने के कारण ऐसी मुसीबत आ पड़ी थी कि कोई हिन्दू उसकी लाश छूने को तैयार नहीं हुआ। यह हाल तो तुम जानती हो !

विश्वेश्वरी ने कहा—जानती हूँ मैया, सब जानती हूँ । लेकिन इस ना-समझी का कारण जातिभेद नहीं है । इसका कारण यही है कि मुसलमानों में इस समय भी एक यथार्थ धर्म मौजूद है; और हम हिन्दुओं में वह नहीं है । जिसे सच्चा धर्म कहते हैं, वह देहात से एकदम उठ गया है । केवल आचार-विचार कहलानेवाले कुछ कुसंस्कार रह गये हैं । और, उनके कारण होनेवाली दलबन्दी की प्रबलता है ।

रमेश ने हताश भाव से सौं स छोड़कर कहा—इसके प्रतिकार का क्या कोई उपाय नहीं है काकी ?

विश्वेश्वरी—है क्यों नहीं मैया । इसका प्रतिकार ज्ञान से ही हो सकता है । जिस राह में तूने पैर रक्खा है, केवल वही राह है—उसी राह से प्रतिकार होगा । इसी से तो मैं तुझसे कहती रहती हूँ कि तू अपनी जन्मभूमि को छोड़कर मत जा ।

प्रत्युत्तर में रमेश कुछ कहने जा रहा था कि विश्वेश्वरी ने रोककर कहा—तू कहेगा, मुसलमानों में भी तो अज्ञान बहुत अधिक है । यह ठीक है, किन्तु उन लोगों का सजीव धर्म ही उनके सब पहलुओं को सुधारे हुए है । मैं एक बात तुझसे कहती हूँ रमेश, पीरपुर में खबर लेने से तुझे मालूम होगा कि जाफ़र नाम के एक बड़े आदमी को वहाँवालों ने जाति से अलग कर रक्खा है । इसका कारण यही है कि वह अपनी विधवा सौतेली मा को खाने-पीने के लिए कुछ नहीं देता । इधर का यह हाल है कि हमारे गोविन्द गांगुली ने अपनी विधवा बड़ी भावज को पीटते-पीटते अधमरा कर दिया; परन्तु समाज की ओर से उसे दण्ड मिलना तो दरकिनार, वह खुद समाज का सिरधरा मुखिया बना बैठा है । ये अपराध हम लोगों की दृष्टि में केवल व्यक्तिगत पाप-पुण्य समझे जाते हैं । भगवान् की इच्छा होगी, तो वे इनका दण्ड देंगे या न देंगे, लेकिन देहात का समाज उधर कभी देखनेवाला नहीं ।

यह नई खबर सुनकर रमेश जैसे एक ओर अवाक् हो गया, वैसे ही दूसरी ओर उसका मन इसी को स्थिर सत्य के रूप में मान लेने को तैयार

न हुआ । विश्वेश्वरी मानों उसके मन का हाल समझ गई । उन्होंने कहा—फल को ही उपाय समझ बैठने की भूल न करना भैया ! जिसके कारण तेरे मन से संशय हटना नहीं चाहता, वह जाति की छोटाई-बड़ाई के लिए हाथ-पैर मारना उन्नति का एक लक्षणमात्र है, कारण नहीं है रमेश । वह सबसे पहले सिद्ध न होने से कुछ काम न होगा, यह समझकर अगर तू उसी के लिए उगय या आन्दोलन करता रहेगा तो न इधर का रहेगा न उधर का ! यदि तू मेरी इस बात की सचाई की जाँच करना चाहता हो तो शहर के आसपास के दो-चार गाँवों में घूम आ, और फिर उनके साथ अपने इस कुर्याँपुर गाँव का मिलान करके देख । आप ही तेरी समझ में सब आ जायगा ।

कलकत्ते के बहुत पास के एक गाँव से रमेश का घनिष्ठ परिचय था । उसी गाँव के स्थूल रूप को साधारणतः अपनी मानस-दृष्टि के सामने रखकर देखने की चेष्टा करते ही रमेश के आगे से मानों एक काला परदा अकस्मात् हट गया । वह गहरे विस्मय और प्रतिष्ठा की दृष्टि से विश्वेश्वरी के मुख की ओर ताकने लगा । उधर भ्रूक्षेप न करके वे अपने पहले वक्तव्य के सिलसिले में हो धीरे-धीरे कहने लगे—इसी से तो तुझसे बार-बार कहती हूँ भैया कि तू अपनी जन्म-भूमि को छोड़कर और कहीं न जा । तेरी तरह जो लोग बाहर रहकर ही बड़े हुए हैं वे अगर तेरी ही तरह अपने गाँव में लौट आते, गाँव से नाता तोड़कर दूर चले न जाते, तो देहात की ऐसी बुरी हालत कभी न होती । वे कभी गोविन्द गांगुली जैसे आदमी को सिर पर चढ़ाकर तुझ सरीखे मनुष्य को दूर न हटा सकते ।

रमेश को रमा की बात याद आ गई । इसी से फिर अभिमान के स्वर में उसने कहा—दूर हट जाने में भी मुझे कुछ दुःख नहीं है काकी ।

विश्वेश्वरी ने इस स्वर पर ध्यान दिया, पर इसका कुछ कारण उनकी समझ में न आया । उन्होंने कहा—ना रमेश, यह किसी तरह न होने पावेगा । यदि आ गया है, यदि तूने काम शुरू कर दिया है, तो बीच राह में उसे छोड़ देने से तेरी जन्मभूमि कभी तुझे क्षमा नहीं करेगी ।

रमेश—क्यों काकी ? जन्मभूमि तो अकेले मेरी ही नहीं है ?

काकी ने उद्दीप्त होकर कहा—अकेले तेरी ही नहीं है तो और क्या ? वह केवल तेरी ही मा है । तू देख नहीं पाता कि मा अपने मुँह से सन्तान के आगे कभी कुछ नहीं माँगती । इसी से इतने लोगों के रहते भी और किसी के कानों में माता के विलाप की ध्वनि नहीं पहुँच पाई । केवल तूने आते ही उसे सुन लिया ।

रमेश ने और बहस नहीं की । कुछ देर स्थिर भाव से बैठे रहकर, चुपचाप गहरी श्रद्धा के साथ विश्वेश्वरी के चरणों की रज अपने मस्तक में लगाकर, वह धीरे-धीरे वहाँ से उठकर चल दिया ।

भक्ति, करुणा और कर्तव्य की एकान्त निष्ठा से हृदय को परिपूर्ण करके रमेश घर लौट आया । उस समय सूर्योदय हुए अधिक देर नहीं हुई थी । रमेश अपने घर में पूर्व ओर की खुली खिड़की के सामने खड़े होकर स्तब्ध आकाश की ओर निहार रहा था कि एकाएक उसे किसी शिशु के कण्ठ का आह्वान सुन पड़ा । उसने चौंककर मुँह फेरा । देखा, रमा का छोटा भाई यतीन दरवाज़े के बाहर खड़ा उसे पुकार रहा है । लज्जा से बालक का चेहरा लाल हो रहा था । उसने पुकारा—छोटे दादा ।

रमेश ने पास आकर उसका हाथ पकड़ा और भीतर लाकर पूछा—किसे पुकार रहे थे यतीन ?

यतीन—आपको ।

रमेश—मुझे ? मुझे छोटे दादा कहकर पुकारने के लिए तुमसे किसने कहा है ?

यतीन—दिदिया ने ।

रमेश—दिदिया ने ? उन्होंने क्या मुझसे कुछ कहने के लिए तुमको यहाँ भेजा है ?

यतीन ने सिर हिलाकर कहा—कुछ नहीं । दिदिया ने कहा—‘अपने छोटे दादा के घर मुझे साथ ले चल ।’ वह देखो, उस जगह दिदिया खड़ी हैं ।

बालक ने उँगली से दरवाज़े की ओर संकेत किया ।

विस्मित और व्यस्त होकर रमेश ने दरवाज़े के पास आकर देखा, रमा एक खम्भे की आड़ में खड़ी है ।

पास आकर विनीत भाव से रमेश ने कहा—आज मेरा कैसा सौभाग्य है ! लेकिन यह तो बतलाओ, मुझे न बुलवाकर स्वयं कष्ट उठाकर तुम यहाँ क्यों आईं ? आओ, घर के भीतर आओ ।

रमा पहले तो कुछ दुबधा में पड़ गई किन्तु फिर यतीन का हाथ पकड़कर रमेश के पीछे-पीछे घर के भीतर आई और भीतर की चौखट के पास बैठ गई । उसने कहा—आज एक बात कहने, एक भीख माँगने, आपके घर आई हूँ । कहिए, दीजिएगा ?

अब वह स्थिर दृष्टि से रमेश के मुँह की ओर देखने लगी । उस दृष्टि ने रमेश के परिपूर्ण हृदय की तन्त्री को अकस्मात् मानों उन्माद के शब्द से बजा दिया; उसकी हृदय-तन्त्री इस तरह बजकर एकदम टूटकर गिर पड़ी । कुछ देर पहले ही उसके मन में जो इरादे—आशा और आकांक्षा की सुन्दर दीप्ति से—नाचते फिर रहे थे, वे एकदम निर्मूल होकर बुझ गये । तथापि रमेश ने पूछा—क्या चाहिए, बेलो ।

रमेश की अस्वाभाविक स्तब्धता रमा की दृष्टि से छिपी नहीं रही । उसने उसी तरह रमेश के मुख पर दृष्टि स्थापित करके कहा—पहले वादा कीजिए ।

रमेश ने क्षण भर चुप रहकर सिर हिलाकर कहा—यह तो मैं नहीं कर सकता । तुमसे कुछ भी बिना पूछे वादा करने की जो शक्ति मुझमें थी उसे तुम्हीं ने, अपने हाथों, मिटा दिया है रमा !

रमा ने विस्मित होकर कहा—मैंने ?

रमेश—तुम्हारे सिवा ऐसा करने की शक्ति और किसी में नहीं थी । रमा, आज तुमसे मैं एक सच बात कहूँगा । जी चाहे, विश्वास करो, न चाहे न करो । लेकिन वह पदार्थ अगर एकदम मरकर ख़तम न हो जाता तो शायद किसी दिन यह बात मैं तुमको न सुना सकता ।

अब तनिक चुप रहकर रमेश ने फिर कहा—आज मेरी या तुम्हारी, किसी की रत्ती भर हानि या लाभ की सम्भावना नहीं है, इसी से मैं आज तुमको जताता हूँ कि उस दिन तक मेरे लिए तुमको अदेय कुछ भी न था। किन्तु क्यों न था, यह जानती हो ?

रमा ने गरदन हिलाकर नाहीं तो कर दी; किन्तु उसका सारा अन्तः-करण मानों किसी लजाजनक आशङ्का से कण्टकित हो उठा।

रमेश ने कहा—तो सुनकर नाराज़ न होना, तनिक भी लज्जा न करना। समझ लो, यह कोई पुराने ज़माने का क्रिस्ता सुन रही हो।

रमा ने मन ही मन प्राणपण शक्ति से रोक देने की इच्छा की; किन्तु उसका सिर इस तरह झुक गया कि वह किसी तरह उसे ऊपर नहीं उठा सकी। रमेश वैसे ही शान्त, कोमल और निर्लित स्वर से कहने लगा—मैं तुम्हें प्यार करता था रमा ! आज मुझे जान पड़ता है, वैसा प्यार कभी किसी ने किसी को नहीं किया। लड़कपन में माँ के मुँह से सुनता था कि तुम्हारे साथ मेरा ब्याह होगा। उसके बाद जिस दिन सब आशा नष्ट हो गई, उस दिन मैं रो पड़ा था। उसकी याद मुझे आज तक हा आती है।

ये बातें गर्म सीसे की तरह रमा के कानों के भीतर प्रवेश करके उसके हृदय को जलाने लगीं,—अत्यन्त अपरिचित अनुभूति की असह्य वेदना से उसके हृदय को एक सिरे से दूसरे सिरे तक काटकर मानों टुकड़े-टुकड़े करने लगीं। किन्तु मना करने का कोई उपाय न खोज पाने के कारण बिलकुल लाचार पत्थर की मूर्ति सी स्तब्ध बनी रहकर रमा, रमेश की, वे विषैली मधुर बातें एक-एक करके सुनने लगी।

रमेश कहने लगा—तुम मन में सोच रही होगी कि मेरा तुमको यह सब हाल सुनाना बेजा है। मेरे मन में भी पहले यही सन्देह था। इसी कारण उस दिन तारकेश्वर में, जब केवल एक दिन के तुम्हारे आदर-यत्न से मेरे सारे जीवन का रुख पलट गया तब भी, मैं चुप ही रहा। किन्तु उस समय वह चुप रहना मेरे लिए सहज न था।

रमा से अब किसी तरह सहा नहीं गया। उसने कहा—फिर आज ही अपने घर में पाकर मेरा अपमान आप क्यों कर रहे हैं ?

रमेश ने कहा—क्या कहा, अपमान ! बिलकुल नहीं। इसमें मान या अपमान की कुछ बात ही नहीं है। यह जिनकी बात हो रही है उनमें से वह रमा भा तुम किसी दिन न थीं, और वह रमेश भी अब मैं नहीं हूँ। खैर, कुछ भी हो, मेरी बात सुनो। उस दिन मुझे, मालूम नहीं क्यों, निःसंशय यह विश्वास हो गया था कि तुम चाहे जो कुछ कहो, चाहे जो कुछ करो, किन्तु मेरा अहित-अमङ्गल किसी तरह तुम बर्दाश्त न कर सकोगी। जान पड़ता है, मैंने सोचा था कि वह जो बचपन में एक दिन तुम मुझे प्यार करती थीं, उसकी स्मृति आज भी बिलकुल तुम भुला नहीं सकी हो। इसी से विचारा था कि तुमको जताये बिना, तुम्हारी ही छाया में बैठकर, अपने जीवन के सब काम धीरे-धीरे करता जाऊँगा। उसके बाद उस रात को अकबर ने आकर मुझसे कहा कि तुमने आप—यह क्या ? बाहर यह शोर-गुल काहे का है ?

इसी बीच गोपाल ने डरे हुए व्याकुल स्वर में पुकारा—बाबू—

रमेश के बाहर आते ही गोपाल ने कहा—बाबू, पुलिसवालों ने भजुआ को गिरफ्तार कर लिया है।

“क्यों ?”

डर के मारे गोपाल के होंठ काँप रहे थे। उसने कहा—परसों राधा-नगर में जो डाका पड़ा था उसमें भजुआ को भी पुलिस शामिल बताती है।

रमेश ने भीतर की ओर देखकर कहा—अब एक सेकिण्ड भी यहाँ न ठहरो रमा, खिड़की के रास्ते निकल जाओ। पुलिस यहाँ खानातलाशी किये बिना न मानेगी।

रमा का चेहरा स्याह हो गया। उसने उठकर कहा—तुम्हें तो कुछ डर नहीं है न ?

रमेश ने कहा—कह नहीं सकता। कहाँ तक क्या हुआ है, सो तो मुझे अभी तक मालूम नहीं।

एक बार रमा के होंठ काँप उठे । उसे खयाल हो आया कि पुलिस-थाने में उस दिन उसी ने रपट लिखाई थी । इसके उपरान्त ही उसने एक एक रोकर कहा—मैं यहाँ से न जाऊँगी ।

विस्मय के मारे क्षण भर रमेश अवाक् खड़ा रहा । उसके बाद बोला—छिः, यहाँ तुम्हारा रहना ठीक नहीं है । रमा, जल्दी चली जाओ ।

रमा की ओर कोई बात न सुनकर रमेश ने यतीन का हाथ पकड़ा और ज़बरदस्ती इन दोनों भाई-बहनों को खिड़की के रास्ते बाहर निकालकर दरवाज़ा बन्द कर दिया ।

१३

आज दो महीने होने को आते हैं, डकैती के असामियों के साथ भजुआ भी हवालात में बन्द है । उस दिन खाना-तलाशी में रमेश के यहाँ सन्देहजनक कोई चीज़ नहीं मिली, और मैरव आचार्य ने अदालत में गवाही दी कि भजुआ उस रात को उसके साथ, उसकी कन्या के लिए वर खोजने, गया था । तो भी भजुआ की ज़मानत नहीं ली गई ।

बेनी ने आकर कहा—रमा, बहुत सी चालें सोचकर तब कोई काम किया जाता है बहन; नहीं तो क्या सहज में शत्रु को नीचा दिखाया जा सकता है ! उस दिन जो तुम थाने में यह बात न लिखा रखती कि भजुआ अपने मालिक के हुक्म से लाठी लेकर तुम्हारे घर पर चढ़कर मछलियाँ छीनने आया था, तो क्या आज उस साले को इस तरह फँसाया जा सकता ! मगर जो कहीं इसी के साथ रमेश के नाम भी दो-एक बातें लिखा देती बहन, तो फिर क्या कहना था ! मेरे कहने पर उस वक्त तुममें से किसी ने ध्यान ही नहीं दिया !

रमा का चेहरा ऐसा मलिन हो गया कि उधर नज़र पड़ते ही बेनी कह उठा—ना, ना, तुमको अदालत में गवाही देने न जाना पड़ेगा । और, मान लो, जाना ही पड़े तो उसमें हर्ज ही क्या है ! किसी काम से हिचकने या हटने से तो ज़मींदारी का काम नहीं चलता !

रमा ने कुछ भी नहीं कहा। बेनी बोला—रमेश सहज में फँसने का नहीं। अबकी वह कुछ कम चालाकी से काम नहीं ले रहा है बहन ! यह जो उसने पीरपुर में नया मदरसा खोल दिया है, उसके कारण हमें कम मुशकिल न होगी। मुसलमान रिआया ऐसे ही ज़मींदार की कुछ परवा नहीं करती, उस पर अगर वे लोग लिख-पढ़ जायँगे तो ज़मींदारी का रहना न रहना एक सा हो जायगा, यह मैं अभी से कहे रखता हूँ।

ज़मींदारी की भलाई-बुराई या लाभ-हानि के बारे में रमा बराबर बेनी की राय के माफ़िक ही चलती थी। इस बारे में दोनों आदमियों के बीच कभी मत-भेद तक नहीं हुआ; किन्तु आज पहले-पहल रमा ने शङ्का की। बोली—इससे रमेश दादा की अपनी भी हानि तो कुछ कम न होगी ?

इस सम्बन्ध में बेनी को भी कम खटका न था। उसने सोच-विचारकर जो कुछ ठीक किया था वही कह दिया—जानती हो रमा, इसमें अपनी हानि सोचने की बात ही नहीं है; हम दोनों आदमी नीचा देख जायँ, बस इसी में वह खुश हो जायगा। देखती नहीं हो, जब से यहाँ आया है तब से रुपये बरसा रहा है। चारों तरफ़ छोटी जाति के लोगों में छोटे बाबू, छोटे बाबू की धूम मची हुई है। मानों एक वही मनुष्य है, और हम—दोनों घर—कुछ भी नहीं; किन्तु यह बहुत दिनों तक नहीं चलेगा। यह जो तुमने पुलिस की नज़र में रमेश को जँचा दिया है बहन, इसी से अन्त को उसका सारा नाम मिट्टी में मिल जायगा, यह मैं कहे देता हूँ।

बेनी ने आश्चर्य के साथ देखा, यह ख़बर सुनकर रमा में जैसा उत्साह और जैसी उत्तेजना देखने की उसने आशा की थी वह कुछ भी न देख पड़ा। बल्कि उसे जान पड़ा मानों रमा के चेहरे का रङ्ग उड़ गया। रमा ने पूछा—मैंने थाने में रिपोर्ट की थी, यह क्या रमेश दादा को मालूम हो गया है ?

बेनी ने कहा—ठीक-ठीक नहीं कह सकता; लेकिन उसे मालूम तो हो ही जायगा। भजुआ के मुक़दमे में सभी बातें ज़ाहिर होंगी।

रमा ने फिर कुछ नहीं कहा। चुपचाप मन ही मन वह मानों एक बड़े भारी धक्के का वेग सँभालने लगी। उसे यही मालूम पड़ने लगा कि रमेश को विपत्ति में डालने में वही सबकी अगुआ है, यह ख़बर रमेश से छिपी नहीं रहेगी। दम भर बाद सिर उठाकर उसने पूछा—क्यों बड़े भैया, तो आजकल शायद रमेश दादा का नाम सभी के मुँह से सुन पड़ता है ?

बेनी ने कहा—केवल हमारे ही गाँव में नहीं, सुनता हूँ, उसकी देखा-देखी और भी पाँच-छः गाँवों में रास्ता पक्का करवाने और स्कूल खोलने की तैयारी हो रही है। आजकल सभी छोटी जातिवाले आपस में कहते हैं कि विलायत के हर एक गाँव में दो-एक स्कूल तो ज़रूर ही हैं, और इसी से साहब लोग इतनी तरक्की कर रहे हैं। रमेश ने यह प्रकट कर दिया है कि जिस गाँव में कोई नया स्कूल खुलेगा उसको वह दो सौ रुपये की सहायता देगा। उसने अपने नानाजी का जितना रुपया पाया है, वह सब इसी काम में खर्च करेगा। मुसलमान लोग तो उसे पीर या पैगम्बर मान बैठे हैं।

रमा के हृदय के भीतर यह बात एक बार बिजली की तरह उजाला करके चमक गई कि अगर रमेश के साथ उसका नाम भी जुड़ा होता तो कैसा अच्छा होता ! लेकिन यह ख़याल एक पल भर ही रहा, इसके उपरान्त ही दुगना अँधेरा उसके हृदय में छा गया।

बेनी कहने लगा—लेकिन मैं भी उसे सहज में छोड़नेवाला नहीं। यह कोई स्वप्न में भी न सोचे कि वह हमारी प्रजा के मिज़ाज को इस तरह बिगाड़ देगा और हम ज़मींदार होकर आँखें मूँदे, मुँह बन्द किये, सब देखते रहेंगे। यह साला भैरव आचार्य भजुआ की तरफ़ से गवाही तो दे आया है, लेकिन अब अपनी लड़की का ब्याह किस तरह करता है, यह मैं देख लूँगा। और भी एक चाल है। देखूँ, गोविन्द चाचा क्या कहते हैं। इसके सिवा देश में ढाके तो पड़ते ही रहते हैं। अबकी बार अगर नौकर को जेल न भेजवा सका तो फिर उसके मालिक को जेल भेजते हम लोगों को बहुत माथापच्ची न करनी पड़ेगी। वह जो पहले

ही दिन तुमने कहा था रमा कि शत्रुता करने में रमेश भी कुछ कसर न रखेगा, सो वह तुम्हारी भविष्यवाणी इस तरह सत्य होगी, यह मैंने नहीं सोचा था ।

रमा ने कुछ भी नहीं कहा । अपनी प्रतिज्ञा और भविष्यवाणी के इस तरह अक्षरशः सत्य होने की खबर पाकर भी जिस स्त्री का चेहरा अहङ्कार से खिल नहीं उठता, बल्कि उस पर गहरी स्याही सी पुत जाती है, उसकी हालत समझने की शक्ति बेनी में नहीं थी । वह शक्ति भले ही न हो, लेकिन यह बात इतनी स्पष्ट थी कि उसके किसी की दृष्टि से छिपने की सम्भावना न थी । बेनी की दृष्टि से भी वह छिपी नहीं रही ।

मन ही मन कुछ विस्मित होकर बेनी उठकर रसोई-घर में गया, और मौसी से दो-एक बातें कहकर अपने घर को जाने लगा कि रमा ने उसे हाथ के इशारे से अपने पास बुलाकर धीरे से कहा—अच्छा बड़े दादा, रमेश दादा अगर जेल ही चले जायँगे तो क्या यह हम लोगों के लिए कलङ्क की बात न होगी ?

बेनी ने अधिक विस्मित होकर पूछा—क्यों ?

रमा ने कहा—अपने आत्मीय को जो हम लोग न बचावेंगे तो सब लोग हमें बुरा न कहेंगे ?

बेनी ने उत्तर दिया—जो जैसा काम करेगा वह वैसा फल भोगेगा । हमारा उसमें क्या ?

रमा ने वैसे ही धीरे से कहा—लेकिन रमेश दादा तो चोरी-डकैती करते नहीं घूमते ! वे तो पराये भले के लिए ही अपना सर्वस्व खर्च कर रहे हैं । यह तो किसी से छिपा न रहेगा । इसके सिवा हमें अपने गाँव में भी तो सबको मुँह दिखाना है ।

बेनी ने ही-ही करके खूब हँसकर कहा—तुम्हें आज हो क्या गया है बहन, बता तो सही ।

रमा ने एक बार इस मनुष्य के चेहरे के साथ रमेश के चेहरे का मन ही मन मिलान करके देखा । अपना सिर उठाकर बेनी की ओर देखना

उसे भारू हो गया । उसने कहा—गाँव के आदमी डर के मारे हमारे मुँह पर भले ही कुछ न कहें, लेकिन पीठ-पीछे तो कहेंगे ही । आप कहेंगे, इससे क्या, पीछे तो बादशाह को लोग गाली देते हैं; लेकिन मैं कहती हूँ, भगवान् तो हैं ! निर्दोष को व्यर्थ की तोहमत लगाकर सज़ा दिलाने से वे तो रिहाई न देंगे ।

बेनी ने नकली क्षोभ प्रकट करके कहा—हाय रे नसीब ! वह लौंडा क्या देवी-देवता किसी को मानता है ! शीतलाजी का मन्दिर गिरा जा रहा है । उसकी मरम्मत कराने के लिए कहने को मैंने उसके पास आदमी भेजा था । उसे दुतकारकर उसने कहा—‘जिन्होंने तुमको भेजा है उनसे जाकर कह दे कि व्यर्थ खर्च करने के लिए मेरे पास रुपये नहीं हैं ।’ ज़रा उसकी बात तो सुनो ! यह उसके लेखे व्यर्थ का खर्च है ! और काम का खर्च है मुसलमानों के लिए स्कूल खोलना ! इसके सिवा ब्राह्मण का लड़का होकर वह पूजा-पाठ कुछ नहीं करता ! सुनता हूँ, मुसलमानों के यहाँ पानी तक पीता है । दो सफ़े अँगरेज़ी के पढ़कर अब उसे जाति-पोंति का कुछ विचार नहीं रह गया है बहन ! उसको सज़ा अभी मिली कहाँ है, सब जमा है । उसे इकट्ठी सज़ा मिलेगी; और सब अपनी आँखों से देखेंगे ।

और वाद-विवाद न करके रमा चुप तो हो गई; किन्तु रमेश के अनाचार और देवी-देवता के प्रति अश्रद्धा की बात स्मरण करके उसका मन फिर रमेश की ओर से विमुख हो उठा । बेनी कुछ बुदबुदाता हुआ घर चला गया । रमा बहुत देर तक एक सी सन्नाटे में खड़ी रही । फिर अपनी कोठरी में जाकर फ़र्श पर बैठ गई । उस दिन एकादशी थी । खाने-पीने की भ्रष्ट न होने के कारण उसे बड़ा आराम जान पड़ने लगा ।

१४

वर्षा बीत गई । आनेवाली दुर्गा-पूजा का आनन्द और मलेरिया का डर बङ्गाल के देहात के आकाश में, हवा में और प्रकाश में भाँकने लगा ।

रमेश को भी मलेरिया-बुखार हो आया। गत वर्ष इस राक्षस के आक्रमण की उसने कुछ परवा न की थी; किन्तु इस वर्ष वह उसको सँभाल न सका। तीन दिन बुखार में पड़े रहने के बाद आज सबेरे उठकर, खूब ज़्यादा सी कुनैन खाकर, खिड़की के बाहर पीले-पीले घाम की ओर दृष्टि स्थिर करके वह सोच रहा था कि गाँव में जो ये अनावश्यक गन्दे पानी के गढ़े और भाड़-भंखाड़ हैं, इनकी हानि बताकर इनके विरुद्ध ग्राम-वासियों को सावधान करना सम्भव है कि नहीं।

तीन दिन बुखार का कष्ट भोगकर ही उसने स्पष्ट सोच लिया कि चाहे जो हो, इसका कुछ उपाय करना ही होगा। वह मनुष्य होकर अगर हाथ पर हाथ रखे बैठा रहे और साल-ब-साल, हर महीने और लोगों को इस रोग में कष्ट भोगने दे तो भगवान् उसे कभी क्षमा न करेंगे।

कई दिन पहले इस प्रसङ्ग की चर्चा छेड़ने से उसे इतना ही मालूम हुआ था कि गन्दे गढ़ों और भाड़-भंखाड़ों से होनेवाले नुक़सान के बारे में ग्रामवासी बिल्कुल बेख़बर नहीं हैं। मगर बात यह है कि पराये घर की मोहरी या गन्दे गढ़ों को बन्द अथवा साफ़ करके, पराई ज़मीन के जङ्गल या भाड़-भंखाड़ को काटकर, अपना समय नष्ट करना कोई नहीं चाहता—यह बेगार करने को कोई राज़ी नहीं होता। जिसके अपने मोहरी, गढ़ा या जङ्गल है, वह यह कहकर बहस करता है कि ये सब तो उसके अपने बनाये नहीं हैं—बाप-दादे के ज़माने से चले आ रहे हैं। अतएव जिसे गरज़ हो वह उन्हें साफ़ कर ले, इसमें उसे कुछ उज़्र नहीं है। किन्तु खुद इस काम में वह न परिश्रम कर सकता है और न पैसा ही खर्च कर सकता है।

रमेश ने पता लगाकर मालूम किया कि ऐसे भी कई गाँव पास-पास हैं जहाँ एक गाँव में मलेरिया का इतना जोर है कि गाँव भर उजड़ा जा रहा है, किन्तु दूसरे गाँव में मलेरिया का जोर नहीं के बराबर है। वह सोच रहा था कि तनिक स्वस्थ होते ही ऐसे किसी गाँव में जाकर, जहाँ मलेरिया का जोर नहीं है, अपनी आँखों से देखकर जाँच कर आवेगा; इसके बाद

अपने कर्तव्य का निश्चय करेगा। निश्चित रूप से उसकी यह धारणा हो गई थी कि जिन गाँवों में मलेरिया महीं है उनमें पानी के निकास का कुछ स्वामाविक सुभीता अवश्य है, जिसे इस तरह साधारणतः लोग नहीं देख पाते; लेकिन कोशिश करके, आँखों में उँगली डालकर, दिखा देने से वे अवश्य देख सकेंगे। कम से कम उसको बेहद माननेवाले पीरपुर के मुसलमानों की आँखें तो खुल ही जायँगी। अपनी इन्जीनियरिङ्ग की शिक्षा को, इतने दिनों बाद, ऐसे बड़े महत्व के काम में लगाने का सुयोग उपस्थित हुआ समझकर रमेश मन ही मन खुश हो उठा।

रोने के से स्वर में “छोटे बाबू!” कहकर किसी ने एकाएक पुकारा। बड़े आश्चर्य के साथ मुख फिरकर रमेश ने देखा, भैरव आचार्य भीतर फ़र्श पर पट पड़ा हुआ औरतों की तरह फूल-फूलकर रो रहा है। उसकी ७-८ वर्ष की एक लड़की भी उसके साथ आई थी। बाप के साथ वह भी चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगी। रोने की आवाज़ से सारा घर गूँज उठा। देखते ही देखते घर के सब आदमी, जो जहाँ था वहाँ से, आकर दरवाज़े पर जमा हो गये। भीड़ सी लग गई। रमेश कुछ निश्चय न कर सका कि इस आदमी का कोई मर गया है या इसका क्या सर्वनाश हो गया है! किससे पूछे, इसका रोना-पीटना किस तरह बन्द करे? वह हक्का-बक्का सा हो गया।

गोपाल भी अपना काम छोड़कर दौड़ा आया था। उसने पास आकर भैरव का हाथ पकड़कर ज्योंही उठाया त्योंही वह उठ बैठा, और गोपाल के गले में दोनों हाथ डालकर बेतरह हाय-हाय करने लगा। यह आदमी मामूली सी बात में ही औरतों की तरह रो देता है, यह स्मरण करके रमेश क्रमशः जब उकता रहा था उसी समय गोपाल के बहुत तरह से ढाढ़स बँधाने पर अन्त को, आँसू पोंछकर, कुछ सावधान होकर भैरव बैठ गया और अपने इस महान् शोक का कारण बतलाने के लिए प्रस्तुत हुआ। उसके मुँह से सब ब्योरा सुनकर रमेश सन्नाटे में आ गया। इतना बड़ा अत्याचार कभी कहीं होने की वह कल्पना भी न कर सका।

मामला यह था :—भैरव की गवाही से भजुआ को छुटकारा मिल जाने पर रमेश ने, पुलिस की सस्नेह दृष्टि से बचाने के लिए, उसके उसके गाँव भेज दिया था। असामी का तो छुटकारा हो गया, लेकिन गवाह के ऊपर आफत आ गई। न जाने किस तरह उड़ती खबर से अपने ऊपर आनेवाली आफत का समाचार पाकर भैरव कल जिला अदालत में पता लगाने गया था। वहाँ उसे मालूम हुआ कि ५-६ दिन पहले बेनी के चचिया-ससुर राधानगर-निवासी सनातन मुखर्जी ने भैरव के नाम, सूद-असल मिलाकर, ग्यारह सौ छब्बीस रुपये सात आने की भूठी डिगरी करा ली है, और दो ही एक दिन के भीतर वह भैरव का घर-बार सब कुर्क करके नीलाम करा लेगा। डिगरी एक-तरफा नहीं हुई। बाकायदे सम्मन निकाला गया, न जाने किसने भैरव के नाम से दस्तखत करके वह सम्मन ले लिया; और वही पेशी के दिन अदालत में हाज़िर होकर, अपने को भैरव बतलाकर, कर्ज़ का होना स्वीकार कर आया। यह ऋण भी मिथ्या है, और फ़र्यादी भी जाली है। यद्यपि इस सर्वव्यापी भूट के सहारे सबल ने दुर्बल का सर्वस्व हड़प करके, उसे रास्ते का फ़कीर बनाकर, घर से निकाल बाहर करने का कुचक रचा है, तथापि सरकार की अदालत में इस अत्याचार से पीछा छुड़ाने का उपाय करना सहज नहीं है। क़ानून के माफ़िक, सम्पूर्ण मिथ्या ऋण की रक़म—जिसकी डिगरी हो चुकी है—अदालत में जमा किये बिना मुँह से बात भी नहीं निकाली जा सकती। सिर दे मारने पर भी कोई ध्यान न देगा। किन्तु इतने रुपये ग़रीब भैरव कहाँ पावे कि उन्हें जमा करके, इस महा अन्याय के विरुद्ध, न्याय के लिए प्रार्थना करके आत्म-रक्षा करे ? अतएव राजा का क़ानून, अदालत, जज, मैजिस्ट्रेट, सबके रहते भी ग़रीब पक्ष को चुपचाप अपना सर्वनाश हेतु देखना ही पड़ेगा। मज़ा यह कि इसे बेनी घोषाल और गोविन्द गांगुली की साज़िश समझने में किसी को रत्ती भर भी सन्देह न था। इस अत्याचार से ग़रीब भैरव की चाहे जैसी दुर्गति हो, उसके नसीब में चाहे जो हो, गाँव के लोग इसके सम्बन्ध में चुपके-

चुपके आपस में बातचीत करते फिरेंगे, लेकिन उनमें से एक भी आदमी सिर उठाकर प्रकट रूप से उसका प्रतिवाद करने की हिम्मत न करेगा। क्योंकि गाँव के वे सब लोग न तो ऊधो के लेने में रहते हैं न माधो के देने में; पराये मामले में टाँग अड़ाना या बोलना उन्हें पसन्द ही नहीं।

खैर, चाहे जो हो, रमेश ने आज यह निःसंशय समझ लिया कि ये कुचक्री लोग देहात की गरीब प्रजा के ऊपर बिना किसी सङ्कोच के अत्याचार करने का साहस कहाँ से पाते हैं, और किस तरह ये लोग देश के कानून का क़साई की छुरी के समान व्यवहार कर सकते हैं। अतएव अर्थ-बल एवं कूटबुद्धि एक ओर जैसे उन्हें राजा के दण्ड से बचाती है, वैसे ही दूसरी ओर मृत समाज भी उनके कुकर्म के लिए उन्हें किसी तरह का दण्ड नहीं देता। यही कारण है कि ये दुष्ट लोग हज़ारों अन्याय करके भी, सत्य और धर्म से शून्य, मुर्दार देहाती समाज के सिर पर पैर रखकर इस तरह बेखटके यथेच्छाचार करते रहते हैं। आज उसे अपनी काकी की बातें बार-बार याद आने लगीं। उस दिन वह मर्मान्तिक हँसी हँसकर उन्होंने कहा था—“रमेश, चूल्हे में जाय तुम लोगों का जाति-पाँति के विचार का और भले-बुरे का भगड़ा; भैया, तू सिर्फ़ प्रकाश कर दे, सिर्फ़ उजेला फैला दे। प्रत्येक गाँव के लोग अज्ञान के अँधेरे में अन्धे हो रहे हैं; एक बार केवल उनके लिए आँखें खोलकर देखने का कुछ उपाय कर दे भैया! तब वे आप ही देख लेंगे कि क्या काला है और क्या सफ़ेद, क्या भला है और क्या बुरा।” काकी ने और भी कहा था—यदि तू लौट आया है भैया, तो अब यहाँ से चला न जाना! तुम लोगों के विमुख होने से ही तुम्हारी जननी देहात की यह दुर्दशा हो रही है।

सच तो है! उसके चल देने से तो इस अन्याय के प्रतिकार का कुछ उपाय न रह जाता।

रमेश ने साँस छोड़कर मन में कहा—हाय रे! यही हमारे गर्व की चीज़ बङ्गाल का शुद्ध, शान्त, न्यायनिष्ठ देहाती समाज है!

किसी दिन, जब यह सजीव था तब, दुष्ट का दमन करके अपने आश्रित नर-नारियों को संसार-यात्रा के मार्ग में बिना विघ्न के ले जाने की भी इसमें शक्ति रही होगी। आज तो यह मुर्दा हो रहा है; तथापि अन्धे देहाती लोग इस भारी हो रहे विकृत शव को छोड़ देने के बदले मिथ्या ममता के मोह में पड़कर, दिन-रात सिर पर लादे-लादे, इस तरह दिन पर दिन क्लान्त, अवसन्न और निर्जीव होते जा रहे हैं कि किसी तरह आँखें खोलकर नहीं देखते। जो चीज़ दुखी की रक्षा नहीं करती, मुसीबत में ही फँसाती है, उसी को समाज समझकर सिर चढ़ाने का महापाप इन लोगों को नित्य नीचे खींचता हुआ रसातल को लिये जा रहा है।

रमेश और भी कुछ देर तक सन्नाटा खींचे स्थिर भाव से बैठा रहा। फिर एकाएक मानों धक्का खाकर उठ खड़ा हुआ, और फ़ौरन् पूरी रकम की एक चेक लिखकर गोपाल के हाथ में देकर बोला—सब मामले को तुम अच्छी तरह समझकर ये रुपये अदालत में दाखिल कर देना, और जिस तरह भी हो, इस मामले की निगरानी का ठीक इन्तज़ाम कर आना, जिसमें ऐसा भयङ्कर अत्याचार करने का साहस उन लोगों को फिर कभी न हो।

हाथ में चेक लेकर गोपाल और भैरव, दोनों कुछ देर तक मानों विह्वल की तरह रमेश की ओर ताकते रहे। रमेश ने जब दुबारा अपने वक्तव्य को अच्छी तरह समझाकर बतलाया, और दोनों को जब यह विश्वास हो गया कि रमेश उनसे दिल्लगी नहीं कर रहा है, तब एकाएक भैरव ने पागल की तरह दौड़कर रमेश के पैर पकड़ लिये और रोकर, चिल्लाकर, आशीर्वाद देकर ऐसी धूम मचा दी कि रमेश की अपेक्षा कम बल-वाले आदमी के लिए अपने को उससे छुड़ा लेना कठिन होता।

गाँव भर में इस समाचार के फैलने में देर नहीं लगी। सभी ने समझा कि अबकी बेनी और गोविन्द का सहज में छुटकारा न होगा। सभी लोग कानाफूसी करने लगे कि छोटे बाबू ने अपने पुराने वैरी को मुट्ठी में करने के लिए ही रुपये हाथ से निकाल दिये हैं। इस बात की

कल्पना करना भी किसी के लिए सम्भव न था कि दुर्बल भैरव के बदले भगवान् ने रमेश के सिर पर पाप का यह भारी बोझ लाद दिया है, जिसे वह सहज ही उठा सकेगा ।

इसके बाद एक महीने के लगभग बीत गया । मलेरिया के विरुद्ध मन ही मन युद्ध की घोषणा करके रमेश इस महीने भर अपने औजार वगैरह लेकर ऐसे उत्साह के साथ जगह-जगह नाप-जोख करता फिरा कि उसे प्रायः यह भूल ही गया था कि कल ही भैरव के मुक़दमे की पेशी है । आज दिन डूबने के पहले, भैरव के दरवाज़े पर, रोशनचौकी और शहनाई की आवाज़ सुनकर अकस्मात् रमेश को पेशी का ख़याल हो आया । नौकर से मालूम हुआ कि आज भैरव के नाती का अन्नप्राशन है । लेकिन रमेश को इसकी ख़बर भी नहीं !

रमेश ने यह भी सुना कि भैरव ने कुछ कम तैयारी नहीं की है । गाँव भर के लोगों को उसने निमन्त्रण दिया है; किन्तु रमेश को भी निमन्त्रण देने कोई आया था या नहीं, यह ख़बर घर का कोई आदमी उसे नहीं दे सका । यही नहीं, उसे याद आया कि भैरव के सिर पर इतने बड़े मुक़दमे का भार रहते हुए भी वह इधर २०-२५ दिन के भीतर एक बार उस (रमेश) से मिलने तक नहीं आया ! मामला क्या है !

किन्तु यह ख़याल उसके मन में आकर भी टिक नहीं सका कि भैरव दुनिया भर के लोगों में से केवल उसी को छोड़ सकता है । इसी से अपनी इस अद्भुत आशङ्का के लिए आप ही लज्जित होकर रमेश उसी दम कन्धे पर चादर डालकर सीधा भैरव आचार्य के घर की ओर ख़ाना हो गया ।

बाहर से ही उसने देखा कि दरवाज़े पर जो बाड़ा बँधा हुआ था, उसके किनारे दो-तीन गाँवों के कुत्ते आकर जमा हैं; उनमें पतलियों की जूटन के लिए घोर कलह मच रही है । थोड़ी ही दूर पर रोशन-चौकीवाले आग सुलगाये तमाखू पी रहे हैं, और ताशे-ढोल वगैरह बाजों को सेक रहे हैं ।

भीतर जाकर रमेश ने देखा, आँगन में एक पुराना शामियाना तना है, जिसमें सैकड़ों छेद हैं। सभी जगह मँगनी जानेवाली ५-६ मिट्टी के तेल की बहुत पुरानी लालटेनें, रमा और बेनी के घर से माँग लाकर, जला दी गई हैं। वे थोड़ी रोशनी और उससे कहीं अधिक धुआँ उगलती हुई सारी जगह में दुर्गन्ध फैला रही हैं। खाना-पीना समाप्त हो जाने के कारण अब उस जगह अधिक आदमी न रह गये थे। महल्ले के बड़े-बूढ़े उस समय उठने का इरादा कर रहे थे; और भी थोड़ी देर बैठने के लिए हरिहर राय से धर्मदास ज़िद कर रहा था। गोविन्द गांगुली वहाँ से थोड़ी दूर पर, एकान्त में, एक किसान के लड़के से बातचीत कर रहा था।

इसी समय रमेश, दुःस्वप्न की तरह, एकदम बीच आँगन में आकर खड़ा हो गया। उसे देखते ही इन लोगों के चेहरे पर मानों किसी ने स्याही पोत दी। शत्रुपक्ष के लोगों को इस तरह इस घर में शरीक होते देखकर रमेश का मुख भी प्रफुल्ल नहीं हुआ। अभ्यर्थना करके रमेश को उचित स्थान पर बिठाने के लिए इतने लोगों में से कोई आगे नहीं बढ़ा—किसी ने रमेश से एक बात तक नहीं की।

भैरव स्वयं उस समय वहाँ पर न था। दम भर बाद घर के भीतर से किसी काम के लिए “मैं कहता हूँ गोविन्द दादा” कहकर वह निकला ही था कि एकाएक आँगन में जैसे उसे भूत देख पड़ा हो इस तरह, रमेश पर नज़र पड़ते ही, उलटे पैरों जान लेकर भीतर घुस गया।

सूखा हुआ मुँह लिये रमेश अकेला जब वहाँ से बाहर निकला तब उसका मन प्रचण्ड विस्मय के धक्के से स्तब्ध सा हो रहा था। पीछे से किसी ने पुकारा—भैया रमेश !

रमेश ने घूमकर देखा, दीनू भट्टाचार्य तेज़ी से कदम बढ़ाता उसकी ओर आ रहा है।

दीनू ने पास आकर कहा—चलो भैया, घर चलो।

रमेश ने कुछ हँसने की चेष्टा की। चलते-चलते दीनू कहने लगा—तुमने जो उपकार भैरव का किया है, वह उसके मा-बाप भी न

करते। यह सभी लोगों को मालूम है; लेकिन कोई उपाय नहीं है। हम सब लोगों को बाल-बच्चे लेकर गिरिस्ती करनी पड़ती है, इसी से तुमको न्योता देने से—समझे भैया—भैरव को भी सोलहों आने दोषी नहीं ठहराया जा सकता; तुम लोग आजकल के शहर के लड़के—जाति-पाँति को तो उतना मानना नहीं चाहते—इसी से तो—समझे न भैया—दो दिन बाद उसे अपनी छोटी लड़की का ब्याह करना है—कोई बारह वर्ष की हो चुकी! हमारे समाज का जो हाल है सो तो सब तुम जानते ही हो भैया—समझ गये न भैया—

रमेश ने उकताकर कहा—जी हाँ, सब समझ गया।

रमेश के घर के सदर दरवाजे पर खड़े होकर दीनू ने प्रसन्न होकर कहा—समझोगे क्यों नहीं भैया, तुम कुछ अबूझ थोड़े ही हो। उस ब्राह्मण को ही दोष कैसे दूँ? हम बूढ़े-बाढ़ों को परलोक की चिन्ता—

“जी हाँ, सो तो ठीक ही है—” कहकर रमेश चटपट भीतर चला गया। उसने अच्छी तरह समझ लिया कि गाँववालों ने उसे जाति-बाहर कर दिया है। अपने घर में बैठकर लोभ और अभिमान के मारे उसकी आँखें जलने लगीं। आज यही उसे सबसे अधिक खलने लगा कि बेनी और गोविन्द को ही भैरव ने आदर के साथ अपने घर में बुलाया, और गाँववालों ने सब समझ-बूझकर भी भैरव के इस व्यवहार को क्षमा ही नहीं किया, बल्कि समाज की खातिर रमेश को जो उसने पूछा तक नहीं, सो उसके इस काम को भी वे प्रशंसा की दृष्टि से देख रहे हैं!

हाय भगवान्! कहकर वह एक कुर्सी पर बैठ गया। फिर लम्बी साँस लेकर उसने कहा—इस कृतघ्न जाति के इस महापातक का प्रायश्चित्त कैसे होगा! इतना बड़ा निष्ठुर अपमान क्या तुम्हीं क्षमा कर सकोगे भगवान्!

१५

इस तरह की आशङ्का रमेश को बिलकुल ही न हुई हो, यह बात न थी, तथापि दूसरे दिन सन्ध्या के समय गोपाल ने अदालत से लौटकर जब

सचमुच यह ख़बर दी कि भैरव आचार्य ने उसी के सिर पर कटहल फोड़कर खाया है, अर्थात् पेशी के समय वह हाज़िर नहीं हुआ, और मुक़दमा एकतरफ़ा डिसमिस हो गया; रमेश का ही दिया हुआ—जमा किया—रुपया बेनी वग़ैरह कुचक्रियों के हाथ में चला गया है, तब पलभर में ही रमेश के क्रोध की आग बिजली की तरह बढ़ गई, और उससे उसका शरीर एँड़ी से चोटी तक प्रज्वलित हो उठा।

उस दिन इन लोगों की जालसाज़ी की छीछालेदर करने के लिए जो भूठे ऋण का रुपया रमेश ने, भैरव की ओर से, अदालत में जमा कर दिया था, उसी के द्वारा महापापिष्ठ भैरव ने, अपना सिर बचाकर, फिर बेनी के ही साथ मेल कर लिया है। उसकी यह कृतघ्नता, कदाकार अपमान के भी बहुत ऊपर स्थान ग्रहण करके, रमेश के मस्तक के भीतर प्रज्वलित होने लगी। रमेश उसी हालत में खड़ा होकर चल दिया। उस समय अपने को सँभालने की बात उसके मन में स्थान न पा सकी।

मालिक की लाल आँखें देखकर गोपाल ने डरकर पूछा—बाबूजी, आप क्या कहीं जा रहे हैं ?

“अभी आता हूँ” कहकर वह तेज़ी के साथ चला गया। भैरव की बाहरी बैठक में घुसकर रमेश ने देखा, वहाँ कोई नहीं है। तब वह भीतर गया। उस समय भैरव की स्त्री, सन्ध्या का दीपक हाथ में लिये, आँगन में तुलसी की आरती करने आ रही थी। एकाएक रमेश को सामने देखकर वह सितपिटा गई। जो कभी नहीं आता वह आज क्यों आया है, यह सोचते ही डर के मारे उसका कलेजा धड़कने लगा।

रमेश ने पूछा—आचार्यजी कहाँ हैं ?

गृहिणी ने अस्पष्ट स्वर में जो कुछ कहा वह सुनाई तो नहीं पड़ा, लेकिन यह मालूम हो गया कि भैरव घर में नहीं है। रमेश के बदन पर कुर्ता तक न था। सन्ध्या के अस्पष्ट धुँधले उजले में उसका चेहरा भी अच्छी तरह देख न पड़ता था।

इसी समय भैरव की बड़ी लड़की लक्ष्मी ने, लड़के को गोद में लिये भीतर से निकलते ही, एक अपरिचित मनुष्य को देखकर माँ से पूछा—
ये कौन हैं अम्माँ ?

लक्ष्मी की माता उसे रमेश का परिचय न दे सकी। वह भी कुछ नहीं बोला। लक्ष्मी डरकर चिल्ला उठी—बप्पा, ओ बप्पा ! न जाने कौन आदमी आँगन में खड़ा है, बोलता नहीं।

“कौन है रे ?” कहकर भैरव आचार्य ज्योंही भीतर से निकलकर आया त्योंही रमेश को देखकर काठ हो गया। सन्ध्या की धुँधली छाया में भी उस लम्बे, सुदृढ़, बलिष्ठ शरीर को पहचानने में उसे देर नहीं लगी।

रमेश ने कठोर स्वर में कहा—इधर आओ।

अब अपेक्षा न करके रमेश खुद ही उसके पास पहुँच गया। वज्र के समान दृढ़ मुठ्ठी में भैरव का हाथ पकड़कर उसने कहा—तुमने ऐसा काम क्यों किया ?

भैरव शेर की भाँति बोला—मार डाला रे ! लक्ष्मी, बेनी बाबू को जल्दी खबर दे।

भैरव के साथ ही घर भर के लड़की-लड़के एक साथ चिल्ला-चिल्लाकर रौने लगे। पलभर में, सन्ध्या के सन्नाटे को चीर करके, बहुत से कण्ठों के गगन-भेदी रौने के शोर से सारा महल्ला डर गया।

रमेश ने एक प्रचण्ड भोंका देकर कहा—चुप ! बतलाओ, तुमने ऐसा काम क्यों किया ?

भैरव ने इसका उत्तर देने की चेष्टा न करके उसी तरह चिल्ला-चिल्लाकर रोते हुए गला फाड़ना और अपने को छुड़ाने के लिए खींचाखींची करना जारी रक्खा।

बात की बात में महल्ले के औरत-मर्दों से सारा आँगन भर गया। तमाशा देखने के लिए भीड़ सी लग गई। भीतर घुसने के लिए लोग ठेलाठेली करने लग गये, किन्तु क्रोध से अधीर हो रहे रमेश की नज़र उधर न थी। सैकड़ों आँखों की कौतूहली दृष्टि के सामने खड़े

होकर वह उन्मत्त की तरह भैरव को पकड़े उसी तरह झटके पर झटका दे रहा था ।

एक तो रमेश के शरीर का बल, अतिरञ्जित होकर, लोगों में कहावत की तरह फैल गया था; उस पर उस समय उसकी आँखों की ओर देखकर घर में जमा इतने लोगों में से किसी की इतनी हिम्मत न हुई कि अभागे भैरव को रमेश के हाथ से छुड़ाने की कोशिश करता ।

गोविन्द भीतर पैर रखते ही भीड़ में छिप गया । बेनी भाँककर खिसका जा रहा था । उसे देखते ही भैरव ने रोकर कहा—बड़े बाबू !—

बड़े बाबू ने उसके आर्तनाद को मानों सुना ही नहीं; पलक लगते ही वह न जाने कहाँ गायब हो गया । एकाएक उस भीड़ के भीतर किसी के आने के लिए राह सी हो गई; उसी के साथ तेज़ी से रमा ने आकर रमेश का हाथ पकड़ लिया और कहा—बस, हो चुका; अब इनको छोड़ दो ।

रमेश ने उसकी ओर अग्निमयी दृष्टि से देखकर कहा—क्यों ?

रमा ने, दाँत से दाँत पीसकर, अस्पष्ट क्रोध के स्वर में कहा—इतने लोगों के सामने यह तमाशा करते तुम्हें शर्म नहीं आती; मैं तो लज्जा के मारे मरी जाती हूँ !

आँगन की भीड़ की तरफ़ देखकर रमेश ने फ़ौरन् भैरव का हाथ छोड़ दिया । रमा ने वैसे ही धीमे स्वर में कहा—घर जाओ ।

रमेश ने उसकी बात नहीं दुलखी; वहाँ से चल दिया । एकाएक जादू का सा तमाशा हो गया ।

रमेश के चले जाने पर रमा के प्रति उसके ऐसे अनुगत भाव को देखकर सभी लोग परस्पर एक दूसरे का मुँह ताकने और एक गन्दा भाव प्रकट करने लगे । जान पड़ा, जैसे यह मामला इतनी धूम-धाम से शुरू होकर जो इस तरह अचानक सहज में निपट गया सो किसी को पसन्द नहीं आया ।

सब लोग अपने-अपने घर चले गये । गोविन्द गांगुली इतनी देर बाद सामने आया । उसने उँगली उठाकर, बहुत ही गम्भीर मुँह बना-

कर, कहा—घर पर चढ़कर ब्राह्मण को वह जो अधमरा कर गया, इसका क्या प्रतिकार करोगे, यह सलाह अब कर लेनी चाहिए ।

भैरव छाती से घुटने सटाये बैठा हाँफ रहा था । उसने निरुपाय भाव से बेनी के मुँह की ओर देखा । रमा तब तक वहाँ से गई नहीं थी । बेनी के इरादे को भाँपकर वह चटपट कह उठी—मगर इस तरफ़ का दोष भी तो कम नहीं है बड़े भैया ! इसके सिवा हुआ ही ऐसा क्या है जो इतनी हलचल की जाय ?

बेनी ने बहुत ही अचम्भे में आकर कहा—कहती क्या हो रमा ?

भैरव की बड़ी लड़की लक्ष्मी उस समय भी खूँटी पकड़े खड़ी रो रही थी । वह चोट खाई हुई नागिन की तरह एकदम गरज उठी—तुम तो उसकी तरफ़दारी करोगी ही रमा दीदी ! अच्छा यदि कोई घर में घुसकर तुम्हारे बाप को इस तरह मार जाता तो तुम क्या करतीं, बतलाओ तो ?

उसका गरजना सुनकर रमा पहले चौंक उठी । अपने पिता का छुटकारा कराने के लिए लक्ष्मी कृतज्ञ नहीं है तो न सही, किन्तु उसकी इस तीव्रता के भीतर से एक ऐसे कटु व्यंग्य की भाँर आकर रमा के हृदय में लगी कि वह एकदम आग हो उठी । रमा ने अपने को सँभालकर कहा—मेरे बाप और तुम्हारे बाप में बड़ा अन्तर है । लक्ष्मी, तुम यह तुलना न करो । मैंने किसी का पक्ष लेकर कोई बात नहीं कही है । मैंने तो भले के लिए ही यह कहा था ।

लक्ष्मी देहात की लड़की ठहरी, भगड़ा करने में प्रवीण थी । उसने चढ़ आकर कहा—यह बात ! उसका पक्ष लेकर लड़ते-भगड़ते तुमको शर्म नहीं आती ? बड़े आदमी की लड़की समझकर लोग डरते हैं, कुछ कहते-सुनते नहीं हैं—नहीं तो तुम्हारी करतूत छिपी किससे है ? तुम हो, इसी से मुँह दिखाती हो, दूसरी औरत होती तो फाँसी लगाकर मर जाती !

बेनी ने लक्ष्मी को झिड़ककर कहा—तू चुप रह लक्ष्मी ! तुझे इन बातों से मतलब ?

लक्ष्मी ने कहा—मतलब क्यों नहीं है ? जिसके कारण बप्पा को इतना दुःख मिला उसी का पत्त लेकर ये भगड़ा करेंगी ? अगर आज बप्पा की जान चली जाती तो !

रमा पल भर के लिए ये बातें मुनकर सन्नाटे में आ गई, किन्तु बेनी के बनावटी क्रोध के स्वर ने उसे फिर उत्तेजित कर दिया । उसने लक्ष्मी की ओर देखकर कहा—लक्ष्मी, उस आदमी के समान मनुष्य के हाथ से मरने का अवसर पाना भी भाग्य की बात है ! आज तुम्हारे पिता की मृत्यु ही हो जाती तो वे स्वर्ग पहुँचते ।

लक्ष्मी गुस्से से जलकर बोली—ओहो ! इसी से शायद तुम मर चुकी हो रमा दीदी ?

रमा ने इस नीच आक्षेप का कुछ उत्तर नहीं दिया । उसने लक्ष्मी की ओर से मुँह फेरकर बेनी की ओर देखकर कहा—तुम्हीं बतलाओ बड़े भैया, बात क्या है ?

अब वह बेनी की ओर स्थिर दृष्टि से ताकती रही । उसकी दृष्टि मानों आँधरे को भेदकर बेनी के अन्तस्तल तक को देखने की चेष्टा करने लगी । बेनी ने क्षुब्ध भाव से उत्तर दिया—मैं क्या जानूँ बहन ! लोग न जाने क्या-क्या कहते हैं । उनकी बातों पर ध्यान देने से कहीं काम चल सकता है ?

रमा ने तमककर पूछा—आखिर लोग क्या कहते हैं ?

बेनी ने बिलकुल लापरवाही के साथ कहा—कहने भी दो रमा, लोगों की बातों से बदन में छाले थोड़े पड़ जायँगे । बकने दो !

बेनी की इस कपट-सहानुभूति का अर्थ रमा स्पष्ट समझ गई । दमभर चुप रहकर उसने झनककर कहा—तुम्हारे बदन में शायद किसी तरह छाले नहीं पड़ते; किन्तु सबके शरीर पर तो गैंड़े का चमड़ा नहीं चढ़ा है ! अच्छा यह तो बताओ, लोगों से ये बातें कहलाता कौन है ? तुम ?

“मैं !”

रमा ने प्राणपण शक्ति से भीतर के दुर्निवार क्रोध के वेग को रोक रखा था—इस समय भी वह बाहर प्रकट न होने पाया । उसने कहा—

हों तुम । तुम्हारे सिवा और कोई नहीं ! दुनिया का कोई बुरा काम तो तुमसे बचा नहीं । चोरी, जालसाज़ी, धोखेबाज़ी, घर फुँकवाना, सभी कुछ कर चुके हो । फिर यही क्यों बाक़ी रह जाय ?

बेनी ऐसा हक्का-बक्का हो गया कि एकाएक कुछ कही न सका ।

रमा ने कहा—स्त्री के लिए इससे बढ़कर बदनामी या सर्वनाश दूसरा नहीं है, यह समझने की शक्ति तुममें नहीं है । लेकिन मैं पूछती हूँ, इस तरह मुझे बदनाम करने में भला तुमको क्या मिलेगा ?

बेनी ने डरकर कहा—मुझे क्या मिलेगा ? लोग तुमको रमेश के घर से तड़के निकलते देखें और कुछ कहें तो मैं क्या करूँ ?

रमा ने यह बात अनसुनी करके कहा—मैं इतने लोगों के सामने और कुछ नहीं कहना चाहती; लेकिन यह न समझना बड़े भैया कि तुम्हारी मंशा मैं समझ नहीं पाई हूँ ! खैर, यह तुम निश्चय जान रखो कि मैं तो मरूँगी ही, लेकिन उससे पहले तुमको भी ज़िन्दा न छोड़ूँगी ।

भैरव की स्त्री अब तक चुपचाप कहीं पास खड़ी सब बातें सुन रही थी । अब रमा के पास आकर, उसका हाथ पकड़कर, घूँघट के भीतर से धीमे स्वर में उसने कहा—पागल हुई हो बेटी ! यहाँ गाँव भर में तुमको कौन नहीं जानता ?

इसके बाद अपनी बेटी को लक्ष्य करके उसने कहा—लक्ष्मी, औरत होकर औरत को ऐसा कलङ्क न लगा, धर्म इसे नहीं सहेगा ! आज इन्होंने तुम सबका जो उपकार किया है, उसका मूल्य अगर तू 'मनुष्य' की बेटी होती तो समझ सकती ।

अब वह ज़बरदस्ती रमा को घर ले गई । स्वामी के प्रति भैरव की स्त्री के इस कठोर श्लेष और निरपेक्ष सत्यवादिता से वहाँ पर उपस्थित सभी लोग कुण्ठित से होकर खिसक पड़े ।

इस घटना की कार्य-कारण-परम्परा चाहे जितनी बड़ी और चाहे जो हो, किन्तु अपने कदाकार असंयम से रमेश का शिक्षित और भद्र अन्तः-

करण पूरे दो दिन तक ऐसा संकुचित बना रहा कि वह घर के बाहर नहीं निकल सका; तथापि इतने लोगों के बीच में अपनी इच्छा से आप ही रमा जो उसकी लज्जा बँटाने आई, यह खयाल उसकी लज्जा की काली घटा में एक बहुत हलकी और चमककर ही छिप जानेवाली बिजली की तरह क्षण-क्षण भर पर सौन्दर्य और माधुर्य की उज्ज्वल रेखा सी अङ्कित कर रहा था। इसी से उसको भोंप में भी परितृप्ति की पीड़ा थी।

इस दुःख और सुख की वेदना को लिये हुए रमेश जब और भी कुछ दिनों तक अपने निर्जन भवन के भीतर अज्ञातवास का सङ्कल्प कर रहा था तब, उसी को उपलब्ध करके, बाहर एक अन्य व्यक्ति के सिर पर अखण्ड लज्जा और अपमान का पहाड़ फटा पड़ रहा था, यह उसने स्वप्न में भी नहीं सोचा।

किन्तु उसे छिपे रहने का सुयोग न मिल सका। आज तीसरे पहर पीरपुर के मुसलमान लोग अपनी पञ्चायत में उपस्थित होने के लिए रमेश को बुलाने आये। वह स्वयं कुछ दिन पहले इस बैठक का प्रबन्ध कर आया था। उसी के अनुसार वे लोग जमा हुए थे। उनमें से कुछ लोग रमेश को यह ख़बर देने आये कि सब लोग आ गये हैं, और छोटे बाबू (रमेश) की राह देख रहे हैं। यह ख़बर पाकर रमेश को बाहर निकलना ही पड़ा। उसने इस पञ्चायत की तैयारी किसलिए की थी, वह भी सुन लीजिए—

पता लगाने से रमेश को मालूम हुआ था कि हर एक गाँव में जो किसान रहते हैं उनमें ग़रीबों की ही संख्या अधिक है। बहुत से ऐसे हैं, जिनके पास अंगुल भर अपनी ज़मीन या कोई जायदाद नहीं है। वे पराई ज़मीन पर रहते हैं, उसका किराया देते हैं और पराई ही ज़मीन को मज़दूरी पर जोतते-बोते और उसी से अपना पेट पालते हैं। दो दिन मज़दूरी न लगने या बीमारी में पड़ने पर उन्हें सपरिवार उग्रवास करना पड़ता है। पता लगाने से उसे यह भी मालूम हुआ कि उनमें से बहुतों की स्थिति किसी समय अच्छी थी; केवल क़र्ज़ ने ही उन्हें चापर कर

दिया। महाजन लोग ज़मीन रेहन रखकर कर्ज़ देते हैं; किन्तु अक्सर वे सूद न लेकर सूद के बदले फ़सल का हिस्सा माँगते हैं। सूद का हिसाब लगाने पर उस 'हिस्से' की कीमत कभी-कभी इतनी होती है कि असल के लगभग हो जाती है। अतएव फल यह होता है कि जो कोई किसान एक बार—चाहे किसी सामाजिक काम-काज के लिए हो, चाहे अनावृष्टि के कारण फ़सल न होने से हो—कर्ज़ लेने के लिए विवश होता है वह फिर पनप नहीं सकता। उसे हर साल उसी महाजन के द्वार पर जाकर, उसके आगे, कर्ज़ के लिए हाथ फैलाना ही पड़ता है। इस बारे में क्या हिन्दू और क्या मुसलमान, सभी किसानों की एक ही हालत है; क्योंकि महाजन प्रायः हिन्दू ही हैं।

शहर में रहते समय रमेश ने इस सम्बन्ध में, पुस्तकें पढ़कर, जो कुछ जाना था वही गाँव में आकर अपनी आँखों देखा। पहले तो वह अभिभूत सा हो पड़ा। उसके बहुत से रुपये बैङ्क में जमा थे। वे रुपये, और और भी बहुत से रुपये जमा करके इन बदनसीब ग़रीब किसानों की अर्थ-पिशाच महाजनों के चंगुल से छुड़ाने के लिए वह कमर कसकर तैयार हो गया—तैयार ही नहीं हुआ, इसी काम में जुट गया।

किन्तु दो-एक काम करके ही उसने धक्का खाया; आँखें खोलकर देखा कि इन ग़रीब किसानों को उसने जितना असहाय और कृपा का पात्र समझता था, वह अधिकांश में ठीक नहीं है। ये ग़रीब, निरुपाय और कमश्रुत तो हैं, लेकिन इनमें बज्जाती या बदमाशी की मात्रा भी कम नहीं है; कर्ज़ लेकर उसे अदा न करने की प्रवृत्ति भी प्रबल है। अधिकांश किसान सीधे और ईमानदार भी नहीं हैं। झूठ बोलते इनका सिर नहा नीचा होता। ये धोखा देना भी खूब जानते हैं। इनमें परोसी की बहू-बेटियों के सौन्दर्य की चर्चा करने का शौक भी कम नहीं है। इनमें मदों का ब्याह होना तो मुश्किल है, लेकिन हर गृहस्थ की गृहस्थी छोटी-बड़ी उम्र की विधवाओं के बोझ से दबी हुई है। इसी से इनके नैतिक जीवन का स्वास्थ्य सोलहों आने बिगड़ा हुआ है। इनके बीच में समाज

का बन्धन भी है, और सामाजिक शासन भी कम नहीं है; किन्तु पुलिस के साथ चोर का जो सम्बन्ध है वही सम्बन्ध इन्होंने समाज के साथ जोड़ रखा है; अथच सब मिलाकर ये लोग ऐसे पीड़ित, इतने दुर्बल और ऐसे कज्जाल हैं कि इन पर क्रोध करके बैठ रहना भी असम्भव है। विद्रोही, विपथगामी सन्तान के प्रति पितृ के मन का जो भाव होता है वही भाव इनके प्रति रमेश के हृदय में हो रहा था, और इसी कारण आज शाम को पीरपुर के नये स्कूल की इमारत में उसने किसानों की पञ्चायत जोड़ी थी।

कुछ देर हुई, सन्ध्याकाल का धुँधलापन हट गया था; और दशमी की चाँदनी खिड़की के बाहर खुले मैदान में इस छोर से उस छोर तक छिटक गई थी। उधर देखकर रमेश जाने की तैयारी कर चुकने पर भी विलम्ब कर रहा था।

इसी समय रमा आकर दरवाज़े के बाहर खड़ी हो गई। उस जगह रोशनी न थी। रमेश ने घर की दासी समझकर कहा—क्यों, क्या चाहिए ?

रमा ने पूछा—आप क्या कहीं जा रहे हैं ?

रमेश चौंक पड़ा। बोला—कौन, रमा ! ऐसे बेवक्त तुम यहाँ कहाँ ?

रमा शाम को क्यों आई थी, दिन रहते क्यों नहीं आई, इसका कारण बतलाने की ज़रूरत नहीं; किन्तु वह किस लिए आई थी, यह बतलाने के लिए बहुत कहने की आवश्यकता होगी। उसे बहुत कुछ कहना था, किन्तु किस तरह अपना वक्तव्य शुरू किया जाय, यह ठीक न कर सकने के कारण वह जहाँ की तहाँ चुपचाप खड़ी रही। रमेश भी आगे कुछ कह न सका।

दस भर चुप रहने के बाद रमा ने पूछा—आपकी तबीयत अब कैसी है ?

रमेश—अच्छी नहीं है। फिर रोज़ रात को बुखार आने लगा है।

रमा—तो कुछ दिन आप बाहर घूम आवें। आब-हवा बदलने से अच्छा होगा।

रमेश ने हँसकर कहा—अच्छा होगा, यह तो मैं जानता हूँ, लेकिन मुशकिल तो यह है कि जाऊँ किस तरह ?

उसको हँसते देख रमा खीझकर बोली—आप कहेंगे, आपको बहुत काम हैं; पर मैं यह पूछती हूँ कि ऐसा क्या काम है जो आपकी दृष्टि में अपने शरीर के स्वास्थ्य से भी बड़ा है ?

रमेश ने पहले की ही तरह हँसकर कहा—मैं यह नहीं कहता कि अपना शरीर या स्वास्थ्य छोटी चीज़ है; किन्तु मनुष्य के लिए ऐसे भी बहुत काम हैं जिनका महत्व इस शरीर से कहीं अधिक है। लेकिन तुम तो यह कुछ समझोगी नहीं रमा !

रमा ने सिर हिलाकर कहा—मैं समझना भी नहीं चाहती। लेकिन यह ज़रूर है कि आपको यहाँ से अन्यत्र कहीं अवश्य जाना पड़ेगा। मुनीमजी से कह जाइए, मैं उनका सब काम-काज देखती-भालती रहूँगी।

रमेश ने विस्मित होकर कहा—तुम मेरा काज-काज देखती-भालती रहोगी ? लेकिन—

“लेकिन क्या ?”

“लेकिन क्या तुम जानती हो कि मैं तुम्हारा विश्वास कर सकूँगा ?”

रमा ने बिना किसी सङ्कोच के फ़ौरन् कह दिया—और कोई बेशक न कर सकता, लेकिन आप कर सकेंगे।

उसके दृढ़ स्वर की इस अचिन्तनीय उक्ति को सुनकर रमेश आश्चर्य के मारे स्तब्ध हो गया। पल भर चुप रहकर उसने फिर कहा—अच्छा, सोचूँगा।

रमा ने सिर हिलाकर दृढ़ता के साथ कहा—नहीं, सोचने-विचारने का समय नहीं है। आज ही आपको यहाँ से कहीं चले जाना होगा। न जाने से—

कहते-कहते उसने स्पष्ट अनुभव किया कि रमेश विचलित हो उठा है; क्योंकि अकस्मात् इस तरह न भागने से कौन सी विपत्ति आ सकती है, इसका अनुमान करना कठिन न था।

रमेश ने ठीक ही अनुमान किया; किन्तु अपने को सँभालकर उसने कहा—अच्छा, अगर मैं आज ही चला जाऊँ तो उससे तुमको क्या लाभ होगा ! मुझे सङ्कट में डालने के लिए तुमने खुद भी तो कुछ कम कोशिश नहीं की, जो मैं कहूँ कि आज और एक विपत्ति से सावधान करने आई हो । वे बातें इतनी पुरानी नहीं हो गईं कि तुम्हें याद न हों । यह खुलासा बतला दो कि मेरे जाने से तुम्हें स्वयं क्या सुविधा होगी तो शायद मैं चले जाने के लिए राज़ी भी हो जाऊँ ।

अब रमेश, उत्तर की प्रत्याशा में, रमा के अस्पष्ट दिख रहे चेहरे की ओर ताकने लगा; पर उसे कुछ उत्तर नहीं मिला । कितना बड़ा अभिमान रमा के हृदय में उबल उठा, यह भी मालूम न हो सका । अधेरे में यह भी न देख पड़ा कि रमेश के इस निष्ठुर विद्रूप की चोट से रमा का चेहरा कैसा फीका पड़ गया ।

कुछ देर स्थिर रहकर रमा ने अपने को सँभाल लिया । इसके बाद कहा—अच्छा, खोलकर ही कहती हूँ । आपके जाने से मुझे लाभ कुछ भी नहीं है; किन्तु न जाइएगा तो मेरी बड़ी भारी हानि है । मुझको गवाही देनी पड़ेगी ।

सुनकर रमेश सूख गया । बोला—यह बात है ! किन्तु जो गवाही न दो तो ?

रमा ने ज़रा थमकर, दम लेकर, कहा—गवाही न देने से यह होगा कि दो दिन बाद यतीन के जनेऊ में मेरे यहाँ कोई भोजन न करेगा । मेरा वारव्रत*—

ऐसी दुर्घटना की सम्भावना से ही रमा काँप उठी; उसकी ज़बान रुक गई ।

आगे की बातें न सुनने से भी काम चल सकता था; किन्तु रमेश से बिना सुने रहा नहीं गया । उसने पूछा—उसके बाद ?

* हफ़्ते में किसी दिन का व्रत रखना ।

रमा ने व्याकुल होकर कहा—उसके बाद भी सुनना चाहते हो ? नहीं, तुम जाओ; मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ रमेश दादा, मुझे सब ओर से मिट्टी में न मिलाओ। तुम जाओ, यहाँ से चले जाओ।

कुछ देर तक दोनों चुप रहे। अबसे पहले चाहे जहाँ और चाहे जिस दशा में, रमा को देखते ही रमेश के हृदय का रक्त चञ्चल हो उठता था; मन में सैकड़ों युक्तियों का प्रयोग करके, अपने हृदय को सैकड़ों कटु वाक्य सुनाकर भी वह शान्त न रख सकता था। हृदय के इस मौन विरोध से वह दुखी होता था, लज्जित होता था, खीझ भी उठता था, किन्तु किसी तरह उसे वश में न कर सकता था। खासकर आज अभी अपने ही घर में उसी रमा को अकस्मात् अकेली देखकर, कल की बातें याद करके, उसके हृदय की चञ्चलता एकदम उद्दाम हो उठी थी। रमा की आखिरी बात से इतने दिनों बाद आज उसका वह हृदय स्थिर हो गया। रमा के इस भय-व्याकुल आग्रह में अखण्ड स्वार्थपरता का रूप इतना सुस्पष्ट हो उठा था कि रमेश के अन्धे हृदय की भी आँखें खुल गईं।

रमेश ने एक गहरी साँस छोड़कर कहा—अच्छा, यही होगा; किन्तु आज तो समय नहीं है। मेरे भागने का कारण तुम्हारे लिए चाहे जितना बड़ा क्यों न हो, आज रात को यहाँ रहना मेरे लिए उससे भी अधिक महत्व का है। अपनी दासी को बुलाओ। मुझे अभी जाना है।

रमा ने धीरे-धीरे कहा—आज क्या किसी तरह आप नहीं जा सकेंगे ? “नहीं। तुम्हारी दासी कहाँ गई ?”

“मेरे साथ कोई नहीं आया।”

रमेश ने दङ्ग होकर कहा—यह कैसी बात है ? तुम यहाँ अकेली किस हिम्मत से चली आई ? एक दासी तक को साथ नहीं लाई !

रमा ने वैसे ही धीमे स्वर में कहा—दासी को लाने से ही क्या होता ? वह भी तुम्हारे हाथ से मेरी रक्षा न कर सकती।

रमेश ने कहा—मुझसे भले ही रक्षा न कर सकती, लेकिन मिथ्या कलङ्क से तो बचा सकती ! रात कुछ कम नहीं बीती है रानी !

वही बहुत दिनों का भूला हुआ सम्बोधन ! एकाएक कुछ कहने के लिए रमा के हृदय में अत्यन्त आवेग उपस्थित हुआ; किन्तु उसने अपने को सँभाल लिया । इसके बाद इतना ही कहा—उससे भी कुछ फल न होता रमेश दादा ! रात अँधेरी नहीं है—मैं मज़े में चली जाऊँगी ।

अब किसी बात के लिए अपेक्षा न करके रमा धीरे-धीरे चली गई ।

१६

हर साल रमा बड़ी धूमधाम से दुर्गा-पूजा का उत्सव करती थी; पूजा के पहले ही दिन गाँव की नीच क़ौमों तथा किसान वग़ैरह को बुलाकर भरपेट भोजन कराती थी । ब्राह्मण के घर जगदम्बा का प्रसाद पाने के लिए लोगों की ऐसी ज़बरदस्ती भिड़ होती थी कि पहर भर रात बीते तक पत्तलों, कुल्हड़ों और जूठन के मारे घर के भीतर पैर रखने को जगह न मिलती थी । केवल हिन्दू ही नहीं, पीरपुर की मुसलमान प्रजा तक बाक़ी न रह जाती थी ।

इस साल, तबीयत ठीक न रहने पर भी, रमा ने इस उत्सव और भोज की तैयारी में कुछ कसर न रखी थी । चण्डी-मण्डप के ऊपरी हिस्से में देवी की प्रतिमा विराजमान थी; पूजा की सब सामग्री रखी हुई थी । नीचे उत्सव और भोजन के लिए लम्बा-चौड़ा आँगन था । सप्तमी के दिन की पूजा ठीक समय पर की जा चुकी थी । धीरे-धीरे दोपहर से तीसरा पहर हो गया, और वह भी समाप्त हो चला । आकाश में सप्तमी का खण्डित चन्द्रमा स्पष्ट दिखाई पड़ने लगा; किन्तु मुखर्जी-परिवार के घर का भारी आँगन इस समय भी वैसा ही ख़ाली पड़ा था; केवल कई पड़ोसी भले आदमी वहाँ दिखाई पड़ रहे थे । घर के भीतर भात का पहाड़ सा ढेर क्रमशः जमकर, पिण्ड बँधकर, कड़ा पड़ता जा रहा था; तरकारी वग़ैरह की ढेरी सूखकर बदरङ्ग होने लगी थी; किन्तु इस समय तक इस गाँव या किसी दूसरे गाँव का एक भी किसान घर में माता का प्रसाद पाने के लिए नहीं आया ।

“ओफ़ ! इतनी खाने-पीने की सामग्री ये नीच जाति के लोग इस तरह ख़राब कर रहे हैं ! इनकी इतनी मजाल !”—यों कहता हुआ बेनी, हुक्का हाथ में लिये, कभी भीतर से बाहर आता और कभी बाहर से भीतर जाता हुआ हॉक-डॉक, शोर-गुल करता और हुमकता फिरता था । कभी कहता—सालों को इसका मज़ा चखाऊँगा, वह सबकुछ सिखाऊँगा कि जन्म भर न भूलेगा ! छप्पर गिरवा दूँगा, आग लगवा दूँगा, घर खुदवाकर गधों का हल चलवा दूँगा ! यह करूँगा, वह करूँगा ! इत्यादि ।

गोविन्द, धर्मदास, हालदार वगैरह बेनी के पिछलग्गू लोग गुस्से से लाल मुँह किये लगातार घूम-फिरकर यह अनुमान करने लगे कि किस साले की कारस्तानी से ऐसी घटना हुई है । हिन्दू और मुसलमान, दोनों एकमत होकर मिल गये, यह भी तो कम आश्चर्य की बात नहीं है ।

इधर घर के भीतर मौसी का रूप बड़ा उग्र हो रहा था । वह एकदम आग होकर अग्निमय वाक्यों की दुर्निवार वर्षा कर रही थी । यह भी महा विकट दृश्य था । इतने भारी हंगामे के बीच केवल एक आदमी चुप था । वह थी रमा । उसने किसी के विरुद्ध एक शब्द भी अपनी ज़बान से नहीं निकाला, किसी को दोष नहीं दिया; रत्ती भर आक्षेप, अभियोग या खेद व्यक्त करनेवाला एक शब्द भी उसके मुँह से अब तक नहीं निकला ।

यह क्या वही रमा है ? इसमें सन्देह का लेश नहीं कि वह बहुत बीमार है; किन्तु वह खुद अपनी बीमारी को स्वीकार नहीं करती—कोई कहता भी है तो हँसकर उड़ा देती है । रोग रूप को तो बिगाड़ ही देता है, वह नष्ट हो तो कुछ आश्चर्य नहीं; किन्तु अब रमा में न वह अभिमान था, न वह क्रोध था और न वह हठ ही था । मलिन आँखें मानों व्यथा और करुणा से भरी हुई थीं । तनिक ध्यान देने से ही मालूम पड़ता है कि इन सजल आवरणों के नीचे रुलाई का समुद्र दबा पड़ा है, जो छूटते ही ब्रह्माण्ड को बहा सकता है ।

चण्डी-मण्डप के भीतरी दरवाज़े से आकर रमा देवी-प्रतिमा के पास खड़ी हो गई। उसे देखते ही शुभचिन्तकों का दल एकदम उच्च स्वर से छेटी जातियों की चौदह पीढ़ियों का नाम ले-लेकर गालियाँ देने लगा।

रमा सुनकर चुपचाप ज़रा हँस दी। वह हँसी वैसी ही थी जैसे डण्टल से तोड़ने पर, मनुष्य के हाथ में आकर, फूल हँसता है। उस हँसी में राग-द्वेष, आशा-निराशा, भला-बुरा कुछ भी प्रकट नहीं हुआ। कौन जाने वह हँसी सार्थक थी या निरर्थक !

बेनी ने खफ़ा होकर कहा—ना, ना, यह हँसी की बात नहीं है, यह बड़ी सत्यानासी बात है ! मुझे यह तो मालूम हो जाय कि इस कुचक्र की जड़ कौन है !

अब उसने दोनों हाथों के नाखून एक करके कहा—इस तरह उसके टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगा !

रमा मन ही मन काँप उठी। बेनी कहने लगा—हरामज़ादे, साले, यह नहीं समझते कि जिसके बल पर तुम यह ज़ोर दिखा रहे हो वह रमेश तो खुद ही जेल में कोल्हू पेर रहा है ! तुम्हें पीस डालते कितनी देर लगेगी ।

रमा ने कुछ नहीं कहा। वह जिस काम के लिए आई थी उसे करके चुपचाप चली गई।

डेढ़ महीने के लगभग हुआ, रमेश अवैध प्रवेश करके भैरव को छुरी मारने के अपराध में जेल काट रहा है ! मुक़दमे में फ़र्यादी की ओर से विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ा। नये मैजिस्ट्रेट साहब को न जाने किस तरह पहले से ही मालूम हो गया था कि इस तरह का अपराध करना असामी के लिए बहुत सम्भव और स्वाभाविक है, उन्हें उसके डकैती वग़ैरह के साथ सम्बन्ध रखने के बारे में भी यथेष्ट सन्देह है। थाने के रोज़नामचे से भी उन्हें विशेष सहायता मिली थी। उसमें लिखा था कि इसी तरह के अपराध रमेश पहले भी कर चुका है तथा और भी अनेक सन्देह-जनक मामलों का उसके नाम से सम्बन्ध है। भविष्य में पुलिस

को रमेश पर विशेष दृष्टि रखनी चाहिए, यह मन्तव्य प्रकाशित करने में भी हाकिम ने कोताही नहीं की। इस मुकदमे में अधिक गवाही-साखी की ज़रूरत नहीं पड़ी। हाँ, रमा को अवश्य रमेश के विरुद्ध गवाही देनी पड़ी थी।

गवाही में रमा ने कहा था—मैं जानती हूँ कि रमेश घर में घुसकर भैरव आचार्य को मारने गया था, लेकिन यह नहीं जानती कि उसने उन्हें छुरी मारी थी या नहीं। मुझे यह भी स्मरण नहीं कि रमेश के हाथ में छुरी थी या नहीं।

किन्तु सत्य बात क्या यही थी? ज़िला-अदालत में हलफ़ लेकर रमा यही सच्ची गवाही दे आई; परन्तु जिस अदालत में हलफ़ लेने की प्रथा नहीं है वहाँ वह क्या जवाब देगी? उससे बढ़कर और कौन अधिक निःसंशय रूप से यह जानता था कि रमेश ने छुरी नहीं मारी, और उसके हाथ में उस समय वहाँ किसी अस्त्र के रहने की कौन कहे, एक तिनका तक नहीं था। उस ऊपर की अदालत में यह बात तो कोई रमा से न पूछेगा कि वह क्या स्मरण कर सकती है और क्या नहीं! किन्तु यहाँ की अदालत में सत्य बोलने का उसके लिए कोई उपाय न था। जिस देहाती समाज की चोटी बेनी वगैरह दुष्टों के हाथ में थी वह नहीं चाहता था कि रमा सच बोले। अतएव उसे विश्वास था कि अगर वह सत्य बोलेगी तो उस सत्य का पुरस्कार यह मिलेगा कि मिथ्या कलङ्क की गहरी कालिख मुँह में पोतकर उसे उक्त समाज के बाहर आकर खड़ा होना पड़ेगा। यह पुरस्कार बहुतों को मिल भी चुका था। इसके सिवा रमेश के लिए इतने कठोर दण्ड की बात रमा ने स्वप्न में भी नहीं सोची थी। बहुत अधिक होगा तो सौ-दो सौ रुपये का जुर्माना हो जायगा, यही उसकी धारणा थी। बल्कि बार-बार सावधान कर देने पर भी जब रमेश किसी तरह गाँव छोड़कर कहीं चले जाने के लिए राज़ी नहीं हुआ तब, नाराज़ होकर, रमा ने मन ही मन यह इच्छा भी की थी कि जुर्माना हो जाय तो एक बार सबक मिल जाय। उसने यह तो कल्पना भी न की थी कि वह सबक ऐसा

दिया जायगा; बीमार रमेश के ज़र्द चेहरे की ओर देखकर भी हाकिम को दया न आवेगी—एकदम छुः महीने के कठोर कारावास की सज़ा सुना दी जायगी ! जिस समय सज़ा सुनाई गई, उस समय, रमा रमेश की ओर आँख उठाकर नहीं देख सकी थी । दूसरे के मुँह से उसने पीछे सुना कि रमेश एकटक उसी के मुँह की ओर ताक रहा था, और जेल का हुक्म हो जाने पर गोपाल की प्रार्थना के उत्तर में उसने कहा था—नहीं, मैजिस्ट्रेट अगर मुझे जन्म भर जेल में रहने की सज़ा दे तो भी मैं अपील करके छुटकारा पाने की इच्छा नहीं करता । इसकी अपेक्षा जेल कहीं अच्छा मालूम पड़ता है ।

बेशक अच्छा है ! रमेश के घर के चिरानुगत भैरव आचार्य ने झूठी नालिश करके जब उसका, एहसान का, ऋण चुकाया और रमा, गवाही के कठघरे में खड़ी होकर, यह स्मरण न कर सकी कि उस (रमेश) के हाथ में छुरी थी या नहीं, तब वह अपील करके अपना छुटकारा चाहे तो काहे के लिए !

रमेश की यह दुर्जय घृणा एक बड़ी चट्टान के समान रमा की छाती पर रखी हुई थी—उसे वहाँ से हटाने की जगह वह कहीं नहीं पाती थी । वह कैसा भारी बोझ है ! यह कैफ़ियत—कि वह झूठ नहीं बोल आई—उसके अन्तर्यामी ने तो किसी तरह स्वीकार नहीं की ! वह झूठ ज़रूर नहीं बोली, लेकिन सत्य को भी तो उसने प्रकट नहीं किया ! अगर उसको पहले यह पता लग जाता कि सत्य को छिपाने का अपराध इतना कठोर है, और वह इस तरह उसके हृदय को दिन-रात जलावेगा तो काहे को इस रास्ते में पैर रखती ! रह-रहकर उसे यही याद आता था कि भैरव के जिस अपराध से रमेश इस तरह अपने को भूल गया, वह कितना बड़ा था ! और रमेश उसकी एक ही बात से वह सब माफ़ करके, मुँह से एक शब्द भी न निकालकर, चुपचाप चला गया ! उस (रमा) की इच्छा को इस तरह शिरोधार्य करके किसने, कब, उसे इस तरह सम्मानित किया था ! अपने हृदय में भीतर ही भीतर जलकर आजकल

वह मानों एक सत्य के दर्शन पा रही थी। जिस समाज के डर से वह इतना बड़ा निन्दित काम कर बैठी वह समाज है कहाँ ! बेनी वगैरह समाजपतियों के स्वार्थ और क्रूर बदला लेने की प्रवृत्ति अथवा ईर्ष्या के बाहर क्या कहीं उसका अस्तित्व है ? गोविन्द की विधवा भावज का हाल कौन नहीं जानता ? बेनी के साथ उसके अनुचित सम्बन्ध की बात तो गाँव भर में किसी से छिपी नहीं है किन्तु समाज के आश्रय में वह निष्कण्टक बैठा हुआ है; और वही कुकर्मी बेनी समाज का मुखिया है। उसी मुखिया की इच्छा की सामाजिक शृंखला को सारे शरीर में, सैकड़ों फन्दों से, लपेट रखना ही चरम सार्थकता समझी जाती है ! यही हिन्दू-धर्म है !

किन्तु सारे अनर्थ की जड़ भैरव आचार्य के ऊपर भी रमा, अपनी दशा देखकर, क्रोध न कर सकती थी। उसकी छोटी लड़की १२ वर्ष की हो चुकी है। बहुत जल्दी उसका विवाह न कर सकने से उसे समाज-च्युत होना पड़ेगा, और घरवालों की जाति नष्ट हो जायगी। इसकी आशंका मात्र होने से हिन्दू-समाज का ऐसा कोई व्यक्ति न होगा, जिसके हाथ-पैर डर से पेट के भीतर न घुस जाँ ! रमा खुद, इतनी सुविधा रहने पर भी, जिस समाज के डर गई उसकी उपेक्षा गरीब भैरव कैसे कर सकता था ! बेनी के विरुद्ध आचरण करना उसके लिए कैसा भयानक होता, यह तो वह खूब जानती है, और उसकी भयङ्करता को किसी तरह अस्वीकार नहीं कर सकती।

बुढ़ा सनातन हाजरा रमा के घर के सामने से जा रहा था। गोविन्द ने देखकर पहले उसे पुकारा, फिर आने के लिए अनुनय-विनय की, और अन्त के एक तरह ज़बरदस्ती ही पकड़ लाकर उसे बेनी के आगे हाज़िर कर दिया।

बेनी ने गरम होकर कहा—तेरा इतना दिमाग़ कब से हो गया रे सनातन ? मैं पूछता हूँ, आज-कल क्या तुम लोगों के धड़ पर दो सिर हो गये हैं रे !

सनातन ने कहा—दो सिर भला किसके होते हैं बड़े बाबू ! जब आप जैसे बड़े आदमियों के ही नहीं होते तब हम गरीबों के भला कहाँ से होंगे !

“क्या कहता है रे !” कहकर बेनी चिल्लाकर दङ्ग हो गया, उसके मुँह से एक शब्द न निकला । इसी सनातन का सर्वस्व जब बेनी के पास रहेन था तब यह दोनों वक्तू आकर बड़े बाबू के पैर चाटता था । आज उसी के मुँह से ऐसी बात सुन पड़ी !

सनातन ने कहा—मैं यही तो कह रहा हूँ बड़े बाबू कि दो सिर किसी के नहीं होते, और कुछ नहीं ।

गोविन्द ने जोश दिलाते हुए कहा—तुम लोगों की हिम्मत हम लोग देख रहे हैं ! माता का प्रसाद पाने को तुम लोगों में से कोई नहीं आया, यह क्यों ! बता तो सही !

बुढ़े सनातन ने तनिक हँसकर कहा—हम लोगों की हिम्मत ! जो कुछ सलूक करना था सो तो आप लोग मेरे साथ कर चुके; कुछ बाक़ी थोड़े ही रक्खा है ! खैर, उसको जाने दीजिए, लेकिन माता का प्रसाद हो चाहे और कुछ हो, कोई मल्लाह का बच्चा अब बाँभन के घर नहीं खायगा । हम लोग आपस में यही कहा करते हैं कि धरती माता इतना पाप कैसे सह रही है !

एक साँस छोड़कर, रमा की ओर देखकर, सनातन ने कहा—तनिक होशियारी से रहना बिटिया, पीरपुर के मुसलमानों के लड़के बदला लेने के लिए पागल से हो रहे हैं । छोटे बाबू के लौट आने पर क्या होगा, सो माँ दुर्गा ही जानें । इसी बीच में दो-तीन दफ़े वे लोग बड़े बाबू के घर के आसपास चक्कर काट गये हैं । इन्हें सामने नहीं पाया, यही कुशल हुई ।

अब उसने बेनी की ओर नज़र डाली । बेनी का क्रोध कपूर हो गया, डर के मारे उसके चेहरे का रङ्ग उड़ गया ।

सनातन कहने लगा—मैं देवता के सामने झूठ नहीं कहता बड़े बाबू, तनिक सँभले रहिएगा । रात-बिरात घर से न निकलिएगा । क्या जानें, कौन कहाँ घात लगाये बैठा हो !

बेनी ने कुछ कहना चाहा किन्तु उसके मुँह से एक शब्द तक न निकला । शायद दुनिया भर में उसकी जोड़ का डरपोक दूसरा न था ।

इतनी देर बाद रमा बोली । उसने स्नेहार्द्र करुण स्वर में पूछा—सनातन, छोटे बाबू को सज़ा होने के कारण ही शायद तुम लोग इतने नाराज़ हो, क्यों न ?

सनातन ने प्रतिमा की ओर एक बार देखकर कहा—बिटिया रानी, भूठ क्यों बोलूँ; बात तो यही है ! किन्तु इससे मुसलमानों को ही सबसे अधिक क्रोध हुआ है । वे ही सबसे ज्यादा बिगड़े हैं । वे छोटे बाबू को हिन्दुओं का पैगम्बर मानते हैं । इसका प्रमाण लीजिए । ज़फ़रअली ने—जिसके हाथ से पैसे की कौन कहे, बूँद भर पानी नहीं निकलता—छोटे बाबू के जेल जाने के दिन उनके खोले हुए नये स्कूल के लिए नक़द एक हज़ार रुपये दे दिये । सुनता हूँ, मसजिद में छोटे बाबू के नाम से नमाज़ तक पढ़ी जाती है ।

यह सुनकर रमा का सूखा हुआ मलिन मुख एक अव्यक्त आनन्द से उद्भासित हो उठा । वह चुपचाप सनातन की ओर एकटक ताकती रही ।

बेनी ने एकाएक सनातन का हाथ पकड़कर कहा—तुम्हें दारोगा साहब के पास चलकर यह सब कहना पड़ेगा ! तू जो माँगेगा वही मैं तुम्हें दूँगा; दो बीघे ज़मीन छुड़ा लेना चाहे तो वही सही । मैं देवता के सामने क्रसम खाकर कहता हूँ, फ़र्क़ नहीं पड़ेगा सनातन ! ब्राह्मण की बात मान ले ।

सनातन विस्मित की तरह थोड़ी देर तक बेनी के मुँह की ओर ताकते रहकर बोला—बड़े बाबू, अब मैं भला कितने दिन और जियूँगा ! लोभ में पड़कर जो मैं यह काम करूँ तो मरने पर मेरी लाश उठाने की कौन कहे, कोई पैर से भी उसे न छुएगा । अब वह ज़माना नहीं रहा बड़े बाबू; अब नहीं रहा ! छोटे बाबू ने सब पलट दिया है ।

गोविन्द ने कहा—तो तू ब्राह्मण का कहना नहीं मानेगा ?

सनातन ने सिर हिलाकर कहा—नहीं । कहने से तुम ख़फ़ा होगे गांगुली महाराज, लेकिन उस दिन पीरपुर के नये स्कूल में छोटे बाबू ने

कहा था कि 'गले में सूत की लच्छी डाल लेने से ही कोई बाँभन नहीं हो जाता।' मैं तो आज का पैदा नहीं हूँ महाराज, सब जानता हूँ। तुम जो कुछ करते हो वह क्या बाँभन को करना चाहिए? बाँभन के क्या ये ही काम हैं?—मैं तुम्हीं से पूछता हूँ बिटिया, तुम्हीं बतलाओ।

रमा ने सिर नीचा कर लिया; कुछ उत्तर नहीं दिया। सनातन उत्साहित होकर जी का बुखार निकालता हुआ कहने लगा—खासकर छोकरे तो बिलकुल नहीं डरते। जब से छोटे बाबू जेल गये हैं तब से इन दोनों गाँवों के छोकरे, शाम के बाद, ज़फ़रअली के घर में जाकर जमा होते हैं। वे चारों ओर खुलासा कहते फिरते हैं कि ज़मींदार तो छोटे बाबू हैं। और सब चोर और डाकू हैं। इसके सिवा हम लोग मालगुज़ारी देकर रहते हैं, किसी को क्यों डरें! हाँ, अगर बाँभन बाँभन की तरह रहें, बाँभन के काम करें तो बाँभन हैं; नहीं तो जो वे हैं वही हम हैं।

डर के मारे बेनी को काठ मार गया। उसने सूखे हुए मुँह से पूछा—सनातन, भला मेरे ही ऊपर उन्हें इतना क्रोध क्यों है, तू बता सकता है!

सनातन ने कहा—ख़फ़ा न होना बड़े बाबू, सारे फ़साद की जड़ तो आप ही हैं। यह बात उन लोगों से छिपी नहीं है।

बेनी चुप होकर बैठा रहा। छोटी जाति के आदमी सनातन के मुँह से ऐसी स्पष्ट अप्रिय बातें सुनकर भी आज उसने क्रोध नहीं किया। क्योंकि क्रोध करने के लायक उसके मन की हालत उस समय थी ही नहीं। डर के मारे उसका कलेजा धड़क रहा था।

गोविन्द ने कहा—तो ज़फ़रअली के घर में सबका अड्डा है—क्यों? वहाँ वे लोग क्या करते हैं? तू कुछ बता सकता है?

सनातन ने गोविन्द के मुँह की ओर देखकर मानों कुछ सोचा। अन्त को कहा—यह तो मैं नहीं जानता कि वे लोग वहाँ क्या करते हैं; लेकिन यह तुमसे कहे देता हूँ कि भला चाहो तो ये सब इरादे छोड़ दो महाराज। वहाँ हिन्दू-मुसलमानों ने आपस में भाई-चारा कर लिया है—

सबका मन एक है, हृदय एक है। छोटे बाबू को जेल की सज़ा होने के बाद से सब लोग गुस्से के मारे बारूद बने बैठे हैं; उनके बीच में जाकर, चकमक पत्थर ठोककर, आग जलाने या चिनगारी उड़ाने का इरादा न करना कहीं !

सनातन चला गया। बहुत देर तक किसी के मुँह से कोई बात नहीं निकली। रमा के उठकर जाने को तैयार होते ही बेनी बोल उठा — सब हाल सुन लिया रमा !

रमा मुसकिया दी, कुछ बोली नहीं। उसे मुसकुराते देखकर बेनी के शरीर में आग सी लग गई। उसने कहा—साले भैरव के ही कारण तो यह आप्रत उठ खड़ी हुई। जो तुम वहाँ न जातीं, उसे छुड़ा न देतीं तो यह कुछ भी न होता। तुम तो हँसोगी ही रमा; औरत ठहरीं, तुम्हें कुछ घर के बाहर तो निकलना ही नहीं पड़ता; लेकिन हम लोग क्या करें ! हमारे लिए क्या उपाय होगा ? सचमुच अगर कोई छोकरा किसी दिन सिर फोड़ डाले तो ? औरत के साथ मिलकर काम करने से यही दशा होती है।

डर, क्रोध और जलन के मारे बेनी एक विचित्र ढङ्ग का मुँह बनाकर बैठ रहा। रमा सुनकर स्तम्भित हो रही। बेनी को वह अच्छी तरह पहचानती थी; लेकिन वह उससे भी इतने बड़े बेशर्मा के अभियोग की आशा नहीं कर सकी थी।

कुछ उत्तर न देकर, कुछ देर खड़ी रहकर, रमा वहाँ से अन्यत्र चली गई। तब बेनी ने लोगों को बुलाकर, साथ में दो लालटेनें और ५-६ आदमी लेकर, आसपास चौकन्नी नज़र डालते हुए डरी हुई चाल से अपने घर के लिए प्रस्थान किया।

१७

विश्वेश्वरी ने भीतर आकर अश्रुगद्गद रोने के स्वर में पूछा—आज कैसी तबीयत है बेटी रमा ?

रमा ने उनकी ओर देखकर तनिक हँसकर कहा —आज तो अच्छी हूँ काकी ।

विश्वेश्वरी उसके सिरहाने आकर बैठ गई, और चुपचाप सिर तथा मुँह पर हाथ फेरने लगीं । आज तीन महीने से रमा खाट पकड़े है—उठती नहीं । खाँसी का जोर है, छाती पर बलगम जमा है, और सारा शरीर मलेरिया के विष से जर्जर हो रहा है । गाँव के बूढ़े वैद्य जी-जान से उसकी वृथा चिकित्सा करके मर रहे हैं । वह बुढ़ा तो जानता नहीं कि काहे के लगातार आक्रमण से उसकी नस-नस दिन-रात जलकर खाक होती जा रही है । केवल विश्वेश्वरी के मन में एक संशय की छाया धीरे-धीरे घनी होती जा रही थी । रमा को वे अपनी लड़की की तरह चाहती थीं । उसमें कोई धोखा-धड़ी नहीं थी । वह अत्यन्त स्नेह ही रमा के सम्बन्ध में उनकी सत्य दृष्टि को असाधारण रूप से तीक्ष्ण कर रहा था । और लोग जिस समय कुछ का कुछ समझकर, भूठी आशा करके, ग़लत व्यवस्था करने लगे उस समय वह देखकर विश्वेश्वरी की छाती फटने लगी ।

वे देख रही थीं कि रमा की आँखें तो घुसी जा रही थीं, किन्तु दृष्टि अत्यन्त तीव्र होती जा रही थी । मानों बहुत ही दूर की किसी चीज़ को बिलकुल समीप से देखने की एकाग्र इच्छा से उसकी असाधारण तीव्र दृष्टि हो उठी है ।

विश्वेश्वरी ने धीरे से पुकारा—रमा !

“क्या है काकी ?”

“मैं तो तेरी माँ के बराबर हूँ रमा—”

रमा बीच में ही बोल उठी—माँ के बराबर क्यों कहती हो काकी, तुम्हीं तो मेरी माँ हो ।

विश्वेश्वरी ने झुककर रमा का माथा चूम लिया, फिर कहा—तो सच बता बेटी, तुझे क्या हुआ है ?

“बीमार हूँ काकी ।”

विश्वेश्वरी ने लक्ष्य किया कि रमा का बिलकुल पीला चेहरा पल भर के लिए लाल हो उठा। तब गम्भीर स्नेह से रमा के रूखे केशों को एक बार सँवारकर विश्वेश्वरी ने कहा—बीमारी को तो इन चमड़े की आँखों से ही देख रही हूँ बेटी! केवल इसी से कुछ नहीं जाना जा सकता। जो और कोई भीतरी बात हो तो इस समय अपनी माँ से मत छिपा बेटी! छिपाने से व्याधि अच्छी न होगी।

खिड़की के बाहर सबेरे की धूप तब तक तेज़ नहीं हुई थी; कोमल-धीमी हवा शीत का आभास दे रही थी। उसी ओर रमा चुपचाप ताकने लगी। दमभर बाद उसने कहा—बड़े भैया अब कैसे हैं काकी?

विश्वेश्वरी ने कहा—अब तो अच्छा है। सिर का घाव पुरने में अभी देर ज़रूर लगेगी; लेकिन ५-६ दिन में ही वह अस्पताल से घर चला आ सकेगा।

रमा के चेहरे पर वेदना के चिह्नों का अनुभव करके विश्वेश्वरी ने कहा—दुख न करो बेटी, उसको इसी की ज़रूरत थी। इससे उसका भला ही होगा।

रमा के चेहरे पर आश्चर्य का आभास पाकर वे फिर कहने लगीं—सोचती हो, माँ होकर बेटे की इतनी बड़ी दुर्घटना के बारे में मैं ऐसी बात किस तरह अपने मुँह से निकाल रही हूँ? किन्तु तुमसे सच कहती हूँ बेटी, इस घटना से मुझे व्यथा अधिक हुई है या आनन्द, सो मैं ठीक नहीं कह सकती। क्योंकि, मैं जानती हूँ कि जो लोग अधर्म को नहीं डरते, जिन्हें लोक-लाज का डर नहीं, उन्हें अगर उतना ही अधिक प्राणों का भय न हो तो फिर संसार उलट-पुलट जाय। इससे केवल यही मन में आ रहा है रमा कि इस तेली के लड़के ने बेनी की जो भलाई, उसे मारकर, की है वह उसका कोई सगा भाई भी न कर सकता। कोयले को धोने से उसका रङ्ग नहीं बदल सकता बेटी, उसे तो आग में जलाना पड़ता है।

रमा—घर में क्या उस वक् कोई नहीं था?

विश्वेश्वरी—था क्यों नहीं, सभी थे, किन्तु वह तेली अचानक तो मार ही नहीं बैठा था। वह तो मारकर जेल जाने का इरादा करके ही तेल बेचने आया था। उसके मन में अपनी ओर से तनिक भी क्रोध नहीं था बेटी, इसी से तो जब उसके हाथ की एक ही चोट से बेनी गिरकर बेहोश हो गया तब वह चुपचाप खड़ा रहा, उसने दूसरा वार नहीं किया। इसके सिवा वह कह गया है कि अब भी अगर बेनी सीधा न हुआ तो वह स्वयं चाहे कभी जेल से लौटे चाहे न लौटे, उसका यही वार आखिरी वार नहीं है।

रमा ने धीरे-धीरे कहा—इसके मानी यह हैं कि उसके साथी और लोग भी हैं। लेकिन मैं यह कहती हूँ कि हमारे यहाँ छोटी जाति के लोगों की इतनी हिम्मत तो कभी न थी काकी! यह साहस उनमें कहाँ से आया?

विश्वेश्वरी ने मुसकिराकर कहा—यह क्या तू नहीं जानती बेटी कि कौन अपने यहाँ के इन छोटी जातिवालों के हृदय में इस तरह साहस भर गया है? आग जल उठने पर योंही तो बुझ नहीं जाती रमा। उसे ज़बरदस्ती बुझाने पर भी वह आउपास की चीज़ों को गरम कर जाती है। मेरा रमेश लौटकर दीर्घजीवी हो, और चाहे जहाँ रहे—बेनी के कष्ट को याद करके मैं कभी गरम साँस न छोड़ूँगी।

किन्तु मुँह से इस तरह कहने पर भी विश्वेश्वरी ने, हृदय से निकली हुई, दीर्घ श्वास को ज़बरदस्ती दबा रक्खा। रमा इसे ताड़ गई। इसी से काकी का एक हाथ खींचकर, छाती पर रखकर, चुपचाप स्थिर पड़ी रही।

थोड़ी देर में अपने को सँभालकर विश्वेश्वरी ने फिर कहा—रमा, एक सन्तान क्या चीज़ है, यह केवल उसकी माता ही जानती है। बेनी को जब वे लोग बेहोशी की हालत में पकड़कर पालकी पर लिटाकर अस्पताल ले गये थे तब मेरे हृदय का क्या हाल हो रहा था, सो मैं तुम्हें कहकर समझा न सकूँगी; तो भी मैंने किसी को शाप नहीं दिया, किसी को बुरा-भला नहीं कहा। मैं किसी को दोष भी नहीं दे सकी। यह बात तो मैं

भूल नहीं सकी बेटी कि एक सन्तान होने के कारण धर्म का शासन तो, माँ का मुख देखकर, चुप नहीं हो रहेगा।

रमा ने कुछ सोचकर कहा—मैं तुमसे बहस नहीं करती हूँ काकी; किन्तु यदि यही होता है तो रमेश दादा किस पाप के लिए यह दण्ड भोग रहे हैं ? हम लोग जो कुछ करके उन्हें जेल भेज आये हैं, वह तो किसी से छिपा नहीं है।

काकी ने कहा—नहीं बेटी, यह बात नहीं है। छिपा न होने के कारण ही बेनी आज अस्पताल में है और तुम्हें—

विश्वेश्वरी बीच में ही एकाएक थम गई। जो बात उनकी ज़बान पर आ गई थी, उसे ज़बरदस्ती भीतर ठेलकर उन्होंने कहा—जानती है बेटी, कोई काम व्यर्थ होकर शून्य में लुप्त नहीं हो जाता। उसकी शक्ति कहीं न कहीं जाकर काम करेगी ही। किन्तु किस तरह वह काम करती है, सो हमेशा मालूम नहीं हो जाता, और इसी कारण इस समस्या की कुछ मीमांसा आज तक नहीं हो पाई कि एक के पाप का प्रायश्चित्त दूसरा क्यों करता है; परन्तु इसमें रत्ती भर सन्देह नहीं कि करना अवश्य होता है।

रमा ने अपने व्यवहार को स्मरण करके चुपके से एक साँस छोड़ी।

विश्वेश्वरी कहने लगीं—इस घटना से मेरी भी आँखें खुल गई हैं रमा। अच्छा करने का इरादा करने से ही अच्छा काम नहीं किया जा सकता। शुरु की कई एक छोटी-बड़ी सीढ़ियाँ उतरने का धैर्य रहना चाहिए। एक दिन हताश होकर रमेश मुझसे कहने आया था कि ‘काकी, इन लोगों की भलाई करने की मुझे कोई ज़रूरत नहीं है। मैं जहाँ से आया हूँ वहीं चला जाऊँगा।’ उस समय मैंने रोककर उससे कहा था कि ‘नहीं रमेश, अगर तूने काम शुरु किया है भैया, तो उसे छोड़कर भागना मत।’ मेरा कहना तो वह किसी तरह कभी टाल नहीं सकता, इसी से जिस दिन मैंने उसे सज़ा होने की बात सुनी उस दिन जान पड़ा कि मैंने ही उसे ज़बरदस्ती पकड़कर—रोककर—यह दण्ड दिया है। किन्तु उसके बाद जिस दिन बेनी को लोग अस्पताल ले गये उस दिन पहले-पहल मुझे

यह शान हुआ कि नहीं, नहीं, रमेश के भी जेल जाने की ज़रूरत थी। इसके सिवा यह तो मुझे मालूम न था कि बाहर से दौड़ आकर किसी की भलाई करने में इतनी विडम्बना होती है—यह काम ऐसा कठिन है ! उस समय यह बात भी तो मेरे मन में न आई थी कि पहले उन लोगों में, जिनका भला करना हो, मिल जाना चाहिए—भलाई-बुराई अथवा दोष-गुण में सबके साथ एक हुए बिना किसी तरह परोपकार नहीं किया जा सकता। पहले से ही रमेश अपनी उच्च शिक्षा, संस्कार, भारी ज़ोर और विशाल हृदय लेकर इतनी उँचाई पर आकर खड़ा हुआ कि अन्त तक कोई उस तक पहुँच नहीं सका; उसे छू नहीं सका। यह त्रुटि मुझे उस समय देख नहीं पड़ी थी बेटी ! मैंने उसे जाने नहीं दिया, पर अपने पास रख भी तो नहीं सकी।

रमा ने कुछ कहने को किया, मगर फिर उसे दबा गई।

विश्वेश्वरी ने यह अनुमान करके कहा—नहीं रमा, मैं इसके लिए नहीं पछताती। लेकिन तू भी सुनकर नाराज़ न होना बेटी,—अब की तुम लोगों ने रमेश को उस बेढब उँचाई से नीचे उतारकर जो सबके साथ मिला दिया है, सबके बराबर कर दिया है, उससे तुम्हें अधर्म चाहे जितना हो, लेकिन वह फिर लौटकर अब की यथार्थ सत्य को देख लेगा, यह मैं तुझसे दावे के साथ कहे जा रही हूँ।

रमा इन बातों का तात्पर्य न समझकर बोली—किन्तु इससे वे नीचे क्यों उतर आवेंगे काकी ! हमारे अन्याय और अधर्म के फल से चाहे उन्हें कितनी ही यातना क्यों न भोगनी पड़े, किन्तु हमारा दुष्कर्म हमें ही नरक के अन्धकूप में ढबेल देगा; उनको क्यों छूने लगा !

विश्वेश्वरी ने तनिक मलिन हँसी हँसकर कहा—छुएगा क्यों नहीं बेटी ! तो फिर पाप इतना भयङ्कर क्यों होता ! कोई उपकार के बदले में प्रत्युपकार न करे, यहाँ तक कि उलटा अपकार ही करे, तो उससे क्या आता-जाता है बेटी, अगर उसकी कृतघ्नता परोपकारी दाता को नीचे न घसीट लावे ! तू कहती है बेटी, लेकिन तुम्हारे कुर्याँपुर की प्रजा क्या

रमेश को, उसके जेल से लौट आने पर, वैसा ही पावेगी ? उसके लौट आने पर तुम लोग स्पष्ट देखोगे कि वह जिस हाथ से दान करता फिरता था, उसके उस दाहने हाथ को भैरव ने तोड़-मरोड़ डाला है ।

ज़रा रुककर उन्होंने फिर कहा—क्या जाने, शायद यह अच्छा ही हुआ हो । उसके बलिष्ठ समूचे हाथ के अपरिमित दान के लेने की शक्ति जब गाँव के लोगों में नहीं थी तब, जान पड़ता है, यह उसका टूटा हाथ ही अब सचमुच उनके काम आ सकेगा ।

अब विश्वेश्वरी ने एक गहरी लम्बी साँस छोड़ी । रमा ने थोड़ी देर तक चुपचाप उनके हाथ से खेलते रहकर धीरे-धीरे बड़े ही करुण स्वर में पूछा—अच्छा काकी, झूठी गवाही देकर निर्दोष को दण्ड दिलाने की सज़ा क्या है ?

विश्वेश्वरी खिड़की के बाहर नज़र किये हुए रमा के रूखे बिखरे बालों में अंगुलि-सञ्चालन कर रही थीं । एकाएक उन्होंने देखा, रमा की बन्द आँखों के किनारों से आँसू बह-बहकर नीचे ढुलक रहे हैं । उन्होंने स्नेह-पूर्वक उसके आँसू पोंछकर कहा—किन्तु उसमें तेरा हाथ तो कुछ था नहीं बेटी । स्त्री की जाति को इतने बड़े कलङ्क का डर दिखाकर जिन कायरों ने तेरे ऊपर अत्याचार किया है, वे ही इसके कठिन दण्ड के भागी हैं । तुझको तो इसका रत्ती भर भी दण्ड न भोगना पड़ेगा ।

अब उन्होंने फिर रमा के आँसू पोंछ दिये । विश्वेश्वरी के इतना सा आश्वास देने से ही रमा के रुके हुए आँसू भरने की तरह बह चले ।

कुछ देर बाद रमा ने कहा—किन्तु वे सब तो उनके शत्रु हैं । वे कहते हैं—‘शत्रु को चाहे जिस तरह नीचा दिखाने में, उसका सर्वनाश करने में, कुछ दोष नहीं है ।’ परन्तु काकी, मैं तो यह नहीं कह सकती ।

“वह तुम्हारा शत्रु क्यों नहीं हैं ?”—यह प्रश्न करके विश्वेश्वरी ने ज्योंही नज़र नीची की त्योंही रमा का मुख देखकर एकाएक उनकी आँखों के आगे बिजली सी चमक गई । जो संशय, मुँह छिपाये हुए, इतने दिन से उनके मन के भीतर अकारण आता-जाता रहता था वह मानों

अपने चेहरे का पर्दा हटाकर एकदम सामने आकर खड़ा हो गया। आज उसको पहचानकर विश्वेश्वरी, वेदना और आश्चर्य से, क्षण भर स्तम्भित सी हो रहीं। अब रमा के हृदय की व्यथा उनसे छिपी नहीं रही। रमा आँखें मूँदे हुए थी, इसलिए वह विश्वेश्वरी के चेहरे का भाव नहीं देख सकी। उसने पुकारा—काकी !

काकी ने चकित होकर, उसके सिर को जरा हिलाकर, उत्तर दिया। रमा ने कहा—एक बात मैं आज तुम्हारे आगे स्वीकार करूँगी काकी। पीरपुर के जफ़रअली के घर सन्ध्या के बाद गाँव के लड़के जमा होते थे और रमेश दादा के उपदेश के अनुसार अच्छी उपयोगी बातों की ही चर्चा करते थे। उन्हें बदमाश बताकर पकड़वा देने की यहाँ साज़िश हो रही थी। मुझे मालूम हुआ तो मैंने आदमी भेजकर लड़कों को सावधान कर दिया; क्योंकि एक बार पुलिस के हाथ में पड़ने से फिर लड़कों का बचाव न हो सकता।

सुनकर विश्वेश्वरी काँप उठीं। बोलीं—तू कहती क्या है रमा ?

रमा—मुझे जान पड़ता है, बड़े दादा की यह चोट उसी चितावनी का फल है। मुझे माफ़ कर दो काकी !

विश्वेश्वरी ने झुककर चुपचाप रमा का माथा चूम लिया। फिर बोलीं—उसकी माँ होकर इसे जो मैं न माफ़ कर सकूँगी तो और कौन कर सकेगा रमा ? भगवान् तुझे इसका पुरस्कार दें।

रमा ने हाथ से आँसू पोछकर कहा—मुझे एक यही सान्त्वना है काकी कि वे लौटकर देखेंगे कि उनके सुख का क्षेत्र तैयार है। उन्होंने जो चाहा था वह पूरा होने को है—उनके गाँव के, उनकी ज़मींदारी के किसानों की नींद उचट गई है, वे जागकर उठ बैठे हैं। उन्होंने उन (रमेश) को पहचान लिया है, उनको वे प्यार करते हैं। इस आनन्द में वे क्या मेरे अपराध को भूल न सकेंगे काकी !

विश्वेश्वरी कुछ कह न सकीं। केवल उनके नेत्रों से आँसू का एक बूँद ढुलककर रमा के गाल पर गिर पड़ा। इसके बाद देर तक दोनों सन्नाटे में चुपकी बैठी रहीं।

रमा ने पुकारा—काकी !

विश्वेश्वरी ने कहा—क्या है बेटी ?

रमा ने कहा—एक ही स्थान में हम दोनों आदमी एक दूसरे से दूर नहीं जा सके । तुमको हम दोनों ने ही हृदय से प्यार किया था ।

विश्वेश्वरी ने फिर झुककर रमा के मस्तक को चूम लिया ।

रमा ने कहा—उसी ज़ोर से मैं तुमसे एक प्रार्थना कर जाऊँगी । मैं जब इस लोक में न रहूँगी तब भी अगर वे मुझे क्षमा न कर सकें तो, मेरी ओर से, केवल यह बात तुम उनसे कह देना काकी कि वे जितना बुरा मुझे जानते थे उतनी बुरी मैं नहीं थी । और, जितना दुःख मैंने उनको दिया उससे अधिक दुःख मैंने स्वयं पाया । तुम्हारे मुँह से यह बात सुनकर इस पर वे अविश्वास न करेंगे ।

विश्वेश्वरी पट होकर, रमा को छाती से लगाकर, रोने लगी । उन्होंने कहा—चल बेटी, हम दोनों किसी तीर्थ में चलकर रहें । आओ, वहाँ चलें जहाँ न तो बेनी है और न रमेश; और जहाँ आँख उठाते ही भगवान् के मन्दिर की चोटी ही देख पड़ती है । मैं सब समझ गई हूँ रमा । अगर इस लोक से तेरे कूच का ही दिन समीप आ गया हो बेटी, तो इस विषय के हृदय में भरे रहकर जलते हुए तो वहाँ जाया न जा सकेगा । वहाँ जाने के दिन हमें उसी के समान निर्विकार होकर उपस्थित होना होगा ।

रमा ने देर तक चुपचाप पड़े रहकर एक उच्छ्वसित दीर्घ श्वास को दबाते-दबाते कहा—मैं भी इसी तरह वहाँ जाना चाहती हूँ काकी ।

१८

छः महीने तक कड़ी मशक़त के साथ जेल में बन्द रहने के बाद वहाँ से छुटकारा पाकर रमेश ने ज्योंही जेल के फाटक के बाहर पैर रक्खा त्योंही उसे जो देख पड़ा, उसका खयाल भी वह कभी न कर सकता था ! स्वयं बेनी घोषाल सिर से चादर लपेटे सबके आगे खड़ा था । उसके पीछे दोनों स्कूलों के मास्टर, पण्डित, विद्यार्थियों का झुण्ड और कुछ हिन्दू-मुसलमान प्रजा थी ।

बेनी ने जोर से रमेश को छाती से लगा लिया और कहा—रमेश, भैया, अबकी मुझे मालूम हुआ कि रक्त का आकर्षण ऐसा होता है। यदु मुखर्जी की लड़की (रमा) हरामज़ादे भैरव को हाथ में करके हमारे साथ ऐसी शत्रुता करेगी, यह जानकर भी मैंने उस समय इस पर विश्वास नहीं किया था, इसका दण्ड भगवान् ने मुझे अच्छी तरह दे दिया।

रमेश हतबुद्धि सा होकर केवल बेनी का मुँह देखने लगा। स्कूल के हेडमास्टर पांडुरई महाशय ने एकदम ज़मीन में लोटकर रमेश की चरण-रज अपने माथे में लगा ली। तब उनके पीछे का दल आगे आया। उसमें से किसी ने आशीर्वाद दिया, किसी ने सलाम किया, किसी ने बड़े आडम्बर के साथ पैर छुए। इस धूमधाम के मारे सड़क खुद सी गई।

बेनी ने आँसुओं से गद्गद स्वर में कहा—अपने बड़े भाई के ऊपर मन में रोष न रखना भैया। चलो, घर चलो। रोते-रोते माँ की आँखें सूज गई हैं, उनके अन्धे होने में कुछ कसर नहीं है।

घोड़ागाड़ी खड़ी थी। बिना कुछ कहे-सुने रमेश उस पर जा बैठा। बेनी ने सामने की गद्दी पर बैठकर सिर से चादर खोल डाली। घाव सूख जाने पर भी चोट का दाग साफ़ मालूम पड़ रहा था।

रमेश ने अकचकाकर पूछा—यह क्या हुआ बड़े दादा ?

बेनी ने लम्बी साँस छोड़कर कहा—भाई, यह मेरी ही करतूत का फल है। लेकिन यह सब सुनकर अब क्या करोगे ?

रमेश का मन पसीज उठा। उसने सोचा, कुछ घटना हो गई होगी। इसी से उसका सारा हाल सुनाने के लिए उसने अधिक जोर नहीं दिया।

कोई दो मिनट चुपचाप बीतने के बाद बेनी ने फिर लम्बी साँस खींचकर कहा—मुझमें यह पैदायशी ऐब है कि मैं भीतर-बाहर एक सा हूँ। दूसरों की तरह मन के भाव को छिपा न सकने के कारण मुझे कितनी ही बार बहुत कष्ट और हानि उठानी पड़ी है, फिर भी मुझे होश नहीं हुआ।

रमेश को चुपचाप सुनते और कुछ बोलते न देखकर बेनी ने कण्ठ-स्वर को और भी करुण, कोमल तथा गम्भीर करके कहना शुरू किया—

मेरा दोष यही था कि उस दिन मन के कष्ट को किसी तरह दबा न सकने के कारण रोते-रोते मैंने कह डाला कि रमा, हम लोगों ने तेरा क्या बिगाड़ा था जो तूने हमारे साथ यह सलूक किया ! रमेश को जेल होने की खबर सुनकर माँ तो जान दे देंगी । तूने एक ही वार से मेरे भाई को और माँ को भी साफ़ कर दिया । खैर, बेगुनाह के भी भगवान् हैं । —

अब बेनी ने गाड़ी के बाहर आकाश की ओर देखकर एक बार मानों फिर भगवान् से फ़र्याद की ।

रमेश अब बेनी की बातें मन लगाकर सुनने लगा ।

बेनी ने ज़रा थमकर कहा—भैया रमेश, रमा की उस रणचण्डी-मूर्ति का स्मरण करने से अब तक हृदय काँप उठता है । उसने दाँत पीसकर कहा कि 'रमेश के बाप ने क्या मेरे बाप को जेल भेजने की तैयारी नहीं की थी ? बस चलता तो क्या वह मेरे बाप को छोड़ देता ?' भैया, स्त्री-जाति का इतना घमण्ड मुझसे तो सहा नहीं गया । मैंने गुस्से में आकर कह डाला—अच्छा, रमेश लौटकर आ जाय, उसके बाद इसका फ़ैसला होगा ।

अब तक बेनी की अधिकांश बातों का मतलब रमेश अपने मन में कुछ भी नहीं समझ सका । उसे खबर नहीं कि कब, किस ज़माने में, उसके पिता ने रमा के पिता को जेल भेजने की तैयारी की थी; किन्तु गाँव में पहले-पहल पहुँचते ही यही बात उसने रमा की मौसी के मुँह से भी सुनी थी । इस समय उसका उसे स्मरण हो आया ।

अब आगे की घटना का वर्णन सुनने के लिए उसने कान खड़े किये । यह लक्ष्य करके बेनी ने कहा—खून करने की तो उसे आदत पड़ गई है न ! उस दिन लठैल अकबर सरदार को भेजा था, याद है न ? सो तुमसे तो उसकी चालाकी चल नहीं सकी; उलटे तुम्हीं ने उसे खासा सबक सिखाकर छोड़ा था ! किन्तु मुझे तो तुम देख ही रहे हो । मैं कमज़ोर—

अब कुछ सोचकर बेनी ने प्रहारकर्ता तेली के छोकरे के कल्पित ब्योरे को, अपने अन्धकारमय अन्तःकरण के भीतर से निकालकर, अपनी भाषा में गाँथकर, थोड़ा-थोड़ा करके कह सुनाया ।

रमेश ने सब सुनकर पूछा—उसके बाद क्या हुआ ?

बेनी ने मलिन मुख में तनिक सी हँसी भलकाकर कहा—उसके बाद मुझे क्या होश रह गया था भाई ! उसके बाद कौन, किसे, किस तरह, कब अस्पताल ले गया और वहाँ क्या हुआ, किसने देखा-भाला, यह कुछ मैं नहीं जानता । दस दिन बाद होश होने पर देखा कि अस्पताल में पड़ा हूँ । इस बार केवल माँ के पुण्यप्रताप से मेरी जान बच गई ।

रमेश के मस्तक में क्रोध और घृणा की भयानक आग जलने लगी । वह खूब जानता था कि बेनी कितना बुरा है । यह भी उससे छिपा न था कि बेनी के लिए असाध्य कुछ नहीं है; किन्तु फिर भी रमेश को इसकी कल्पना करने की अभिज्ञता न थी कि दुनिया में कोई मनुष्य इतना भूठ, बिना किसी सङ्कोच के सिलसिलेवार कह सकता है । इसी कारण रमा पर आरोपित सभी अपराधों को वह सच समझ बैठा ।

रमेश के गाँव पहुँचने पर गाँव भर में एक उत्सव सा शुरू हो गया । उसके घर पर रोज़ सबेरे, दोपहर को और कभी-कभी रात तक इतना जम-घट होने लगा, इतनी आत्मीयता की अधिकता देख पड़ने लगी कि उसके मन में जेल जाने की जो ग्लानि बाक्की थी वह बात की बात में नष्ट हो गई । इसमें कोई संशय नहीं कि उसकी अनुपस्थिति में गाँव के भीतर बहुत बड़ा सामाजिक स्रोत बह गया है, किन्तु इन्हीं कुछ महीनों में इतना बड़ा परिवर्तन कैसे हो गया, यह सोचते समय उसे देख पड़ा कि बेनी की प्रतिकूलता अथवा विरोध के कारण पग-पग पर बाधा पाकर जो शक्ति काम नहीं कर पाती थी, अथच जमा हो रही थी, वही इस समय बेनी की अनुकूलता पाकर, दूने वेग से प्रवाहित हो रही है । बेनी को आज उसने और भी अच्छी तरह पहचाना । इस मनुष्य को अपना ऐसा अनिष्टकारी जानकर भी गाँव भर के लोग उसके कैसे कहे में हैं !

उसी के विरोध से छुटकारा पाकर रमेश ने आज आराम से साँस ली । यही क्यों, रमेश के ऊपर अन्याय-पूर्ण अत्याचार होने के कारण गाँव के लोगों के मर्मस्थल को चोट लगी थी, और वे सब एक बार आकर रमेश

को यह बात जता गये । उनकी सहानुभूति पाकर और बेनी को अपने पक्ष में देखकर आनन्द और उत्साह से रमेश की छाती फूल उठी ।

छः महीने पहले जो-जो काम शुरू करके ही रमेश को छोड़ देने पड़े थे, उनमें फिर पूरे जोश से लग जाने का पक्का इरादा करके वह खुद कुछ दिनों के लिए हँसी-खुशी में मग्न हो गया । वह सब जगह, छोटे-बड़े सभी के घर, जाकर सब बातों की खोज-खबर लेने लगा । केवल एक व्यक्ति की ओर से वह अपने को सब तरह से बचाये हुए था; वह थी रमा । वह रमा का नाम भी कभी ज़बान पर न लाता था ।

जेल से लौटते वक्त रमेश को रमा की बीमारी की खबर मिल गई थी; किन्तु उसने यह खबर लेना भी अच्छा नहीं समझा कि रमा की बीमारी अब किस हद को पहुँच गई है । रमा के सब प्रकार के सम्बन्ध से उसने अपने को सदा के लिए अलग कर लिया है, यही उसकी धारणा हो रही थी ।

गाँव में पहुँचते ही उसने लोगों से सुना था कि एक रमा ही उसके सब दुःख और कष्ट की जड़ है । अतएव उसे सन्देह नहीं रहा कि इस सम्बन्ध में बेनी भूठ नहीं बोला ।

पाँच-छः दिन बाद बेनी ने आकर रमेश को पकड़ा । वह इस बात पर बड़ा जोर देने लगा कि पीरपुर की एक बड़ी जायदाद के हिस्से के बटवारे के मामले में, बहुत दिनों से, रमा के साथ उस (बेनी) का गुप्त रूप से झगड़ा चला आ रहा है । अब यह अच्छा मौका हाथ लगा है । इसलिए उस जायदाद को अपने हाथ में कर लेने की उसकी प्रबल इच्छा है, इसमें रमेश उसका साथ दे ।

रमेश को बड़ा आश्चर्य हुआ । उसने ऐसा अन्याय करना स्वीकार नहीं किया । बेनी ने तरह-तरह की युक्तियों से काम लिया; पर फल कुछ न हुआ । अन्त को हारकर उसने कहा—तुमसे यह काम क्यों न होगा जी ! मौका मिलने पर उसने कब तुम्हारे साथ रिश्तायत की है, जो तुम उसकी बीमारी का खयाल करके सोच-विचार में पड़े हुए हो ! तुमको जब उसने जेल भिजवाया था तब तुम क्या कम बीमार थे ?

बात तो सच थी; फिर भी न-जाने क्यों रमेश का मन रमा की विप-
त्ता करने को तैयार नहीं हुआ। बेनी ने हजार कटु प्रसङ्ग उठाकर
रमेश को उत्तेजित करना चाहा; परन्तु रमा की असहाय बीमारी की हालत
का खयाल आते ही रमेश की सारी विरुद्ध शक्ति संकुचित होकर बूँद बन गई।

रमेश चुप हो रहा। बेनी ने समझा, काम फ़तेह हो गया। वह
धैर्य धरना भी खूब जानता था। उस समय, इस काम के लिए,
अधिक दबाव न डालकर वह अपने घर चला गया।

अबकी एक बात ने और रमेश की दृष्टि को अपनी ओर विशेष रूप
से खींचा था। यह तो वह पहले भी जानता था कि दुनियादारी के ऊपर
विश्वेश्वरी के मन में किसी दिन विशेष आसक्ति नहीं थी; किन्तु अबकी
लौटने पर उसने जो कुछ देखा उससे उसे जान पड़ा कि विश्वेश्वरी की
वह दुनियादारी के प्रति लापरवाही वितृष्णा के रूप में बदल गई है।

आज अचानक बातों ही बातों में उसने सुना कि विश्वेश्वरी काशीवास
करने जानेवाली हैं—लौटकर गाँव में न आवेंगी।

सुनकर वह चौंक पड़ा। अर्रँ ! उसे तो इसकी कुछ ख़बर ही
नहीं ! बहुत से कामों में उलझे रहने के कारण आज ५-६ दिनों से
वह विश्वेश्वरी से नहीं मिल सका; किन्तु इसके पहले जिस दिन भेंट हुई
थी उस दिन तो उन्होंने इस बारे में कुछ भी नहीं ज़ाहिर किया था।

अब उसे रत्ती भर भी सन्देह नहीं रहा कि काकी सचमुच घर-गिरिस्ती
से विदा हो रही हैं ! यह घटना उसके लिए कैसी भयङ्कर है, उनका
यहाँ न रहना उसके लिए कैसा भारी अभाव है, यह सोचते ही रमेश की
आँखों में आँसू भर आये।

रमेश फ़ौरन् विश्वेश्वरी के घर पहुँचा। उस समय ६—१० बजे
का समय रहा होगा।

घर के भीतर घुसते ही दासी ने सूचना दी कि माँ इस समय घर में
नहीं हैं, रमा के घर गई हैं।

रमेश ने चकित होकर कहा—ऐसे बेवक़ !

दासी ने कहा—माँ के लिए वक्त-बेवक्त कुछ नहीं है। इसके सिवा मुखर्जी के घर में छोटे बाबू (रमा के भाई यतीन) का जनेऊ है न।

यतीन का आज यज्ञोपवीत है ! रमेश ने और अधिक विस्मित होकर कहा—यह तो किसी को नहीं मालूम !

दासी—उन लोगों ने किसी को बतलाया ही नहीं। और बतलाने या बुलाने से भी तो कोई जाकर उनके यहाँ पानी न पीता। रमा दीदी को सब मुखियों ने जाति-बाहर कर दिया है कि नहीं !

रमेश के आश्चर्य की सीमा न रही। उसने तनिक ठहरकर पूछा—
इसका कारण ?

कारण पूछते ही दासी ने शरमाकर, दूसरी ओर गरदन फेरकर, कहा—क्या जानें छोटे बाबू, रमा दीदी की चारों ओर बदनामी की गई है कि नहीं ! हम गरीब-दुखी प्रजा इन बातों का हाल क्या जानें। मुझे कुछ नहीं मालूम छोटे बाबू !

अब दासी वहाँ से खिसक गई।

कुछ देर चुपचाप खड़ा रहकर रमेश अपने घर लौट आया। बिना पूछे ही उसने जान लिया कि यह बेनी के क्रोध का ही फल है। ऐसा नीच बदला और कोई नहीं ले सकता; किन्तु उसके समान सरल मनुष्य को ठीक-ठीक यह अनुमान करना भी असम्भव था कि बेनी के इस क्रोध का कारण क्या है, अथवा रमा की बदनामी का रूप क्या है।

१६

उसी दिन, तीसरे पहर, अदालत के फ़ैसले की परवा न करके कैलास नाई और शेख़ मोती, दोनों फ़रीक़—गवाही और सबूत लेकर—रमेश की शरण में आये। उन्होंने कहा—आप हमारा झगड़ा निपटा दीजिए।

रमेश ने स्वाभाविक आश्चर्य के साथ कहा—मेरे फ़ैसले को तुम लोग मानने क्यों लगे भाई !

मुद्दई-मुद्दाअलेह, दोनों ने जवाब दिया—मानेंगे क्यों नहीं बाबू साहब ? हाकिम से आप विद्या या बुद्धि, किस बात में कम हैं ? कल को अगर आप सरकारी नौकरी करके हाकिम हो जायँ, और हमारा फ़ैसला करें तो वह क्या हमें सिर-आँखों से मञ्जूर न करना पड़ेगा ?

ये बातें सुनकर रमेश का हृदय आनन्द से भर गया ।

कैलास ने कहा—आपसे तो हम दोनों आदमी अपनी बात समझाकर कह सकेंगे, लेकिन अदालत तो उस सहूलियत से हमारी बात न सुनेगी । इसके सिवा गाँठ का पैसा मुट्ठी भरकर वकील को न दे सकने से अदालत में किसी तरह सुविधा नहीं होती बाबूजी ! यहाँ आपसे फ़ैसला कराने में न तो एक पैसे का खर्च है और न कोई झूझझट । बाबू, आप जो फ़ैसला करेंगे, हुक्म देंगे, वह भला हो या बुरा, हमारे माफ़िक हो चाहे खिलाफ़, हम उसी में राज़ी होकर आपके पैर छूकर अपने घर लौट जायँगे । भगवान् ने हमें सुबुद्धि दी, इसी से हम दोनों ने अदालत से लौट आकर आपके ही चरणों की शरण ली ।

एक छोटे से नाले के लिए दोनों में झगड़ा था । कागज़-पत्तर की लिखावट जो कुछ साधारण सी थी वह रमेश के हाथ में देकर, दूसरे दिन सबेरे आने को कहकर, दोनों अपने साथियों को लेकर चले गये । रमेश स्थिर होकर थोड़ी देर तक जहाँ का तहाँ बैठा रहा ।

यह रमेश की कल्पना से दूर था । सुदूर भविष्य के लिए भी उसने अपने मन में इतनी बड़ी आशा को जगह नहीं दी थी । इसी से उसके हृदय में आनन्द का समुद्र लहरें मारने लगा ।

यद्यपि अधिक कुछ नहीं था, मामूली दो गाँववालों के बहुत मामूली झगड़े की बात थी, तथापि इसी तुच्छ विवाद के सूत्र से उसके चित्त में अनन्त सम्भावना के आकाश-कुसुम खिलने लगे ।

बाहर वसन्त ऋतु की चाँदनी से आकाश पूर्ण हो रहा था । उसी ओर देखकर एकाएक उसे रमा का खयाल आ गया । कोई और दिन होता तो इसी खयाल के साथ उसका शरीर जल उठता ।

उसने मन ही मन हँसकर रमा के उद्देश्य से कहा—तुम्हारे हाथ से भगवान् मुझे और मेरे काम को इस तरह इतना सार्थक बनावेंगे, तुम्हारा विष मेरे भाग्य में इस तरह अमृत हो जायगा, यह बात जो कहीं तुम जान जातीं रमा तो, जान पड़ता है, कभी मुझे जेल भेजना न चाहतीं ।

“कौन है ?”

“मैं हूँ राधा छोटे बाबू ! रमा दीदी ने एक बार ज़रूर-ज़रूर भेंट करने के लिए आपसे कहला भेजा है ।”

रमेश अकचकाकर उसकी ओर देखने लगा ।

दासी ने फिर कहा—छोटे बाबू, अगर एक बार दया करके आप—

रमेश—वह है कहाँ ?

दासी—घर में लेटी हुई हैं । (ज़रा रुककर) कल तो फिर मिलने का मौक़ा न मिलेगा, इसी से जो अभी चल—

“अच्छा, चल, मैं आता हूँ” कहकर रमेश उठ खड़ा हुआ ।

रमेश को बुलाने के लिए दासी भेजकर रमा एक प्रकार से बिस्तर पर चौकन्नी लेटी हुई थी ।

दासी के बतलाने के माफ़िक़ रमेश ने रमा के कमरे में घुसकर बैठने के लिए एक चौकी खुद खींच ली । रमेश के बैठते ही रमा ने, मानों अपने मन के बल से ही, अपने निर्बल शरीर को खींच लाकर उसके पैरों के पास डाल दिया ।

कोने में एक चिराग़ टिमटिमा रहा था । उसकी हलकी रोशनी में रमेश ने अस्पष्ट आकार में रमा को जितना कुछ देखा, उससे उसकी शारीरिक दशा का उसे कुछ भी पता न चला ।

तनिक चुप रहकर रमेश ने कोमल स्वर में पूछा—अब कैसी हो रानी ?

रमेश के पैरों के पास से ज़रा खिसककर रमा बोली—मुझे आप रमा कहने की ही कृपा करें ।

रमेश की पीठ में मानों किसी ने चाबुक मार दिया । उसने उसी दम कठिन होकर कहा—अच्छा, यही होगा । मैंने सुना था, तुम बीमार

हीं। अब कैसी हो, यही पूछ रहा था; नहीं तो तुम्हारा नाम चाहे जो हो, उसे लेने की न तो मेरी इच्छा है और न आवश्यकता ही होगी।

रमा सब समझ गई। उसने तनिक चुप रहकर धीरे-धीरे कहा—“अब मैं अच्छी हूँ।” इसके बाद कहा—मेरे बुला भेजने से आपको शायद बड़ा आश्चर्य हुआ होगा; लेकिन—

रमेश ने बीच में ही तीव्र स्वर से कहा—नहीं, बिल्कुल आश्चर्य नहीं हुआ। अब बताओ, तुमने किसलिए बुला भेजा है।

थोड़ी देर चुपचाप सिर झुकाये बैठी रहकर रमा ने कहा—रमेश दादा, आज दो कामों के लिए मैंने तुमको बुलाकर कष्ट दिया है। मैं जानती हूँ कि मैंने तुम्हारे कितने अपराध किये हैं; लेकिन फिर भी मुझे निश्चय था कि तुम आश्चर्य, और मेरे इन दोनों अन्तिम अनुरोधों को भी अस्वीकार न करोगे।

आँसुओं के वेग से एकाएक उसका स्वर-भङ्ग हो गया। वह इतना स्पष्ट था कि रमेश से छिपा नहीं रहा; पलक मारते ही रमेश के हृदय में पहले का स्नेह उमड़ पड़ा। आज यह निश्चित अनुभव करके रमेश खुद भी विस्मित हो गया कि वह स्नेह इतने घात-प्रतिघात सहकर भी अब तक मरा नहीं था; केवल निर्जीव, अचैतन्य की तरह दबा पड़ा था।

दमभर चुप रहकर रमेश ने पूछा—सुनूँ, तुम्हारा क्या अनुरोध है ?

रमा ने चौंकर सिर उठाकर ही फिर झुका लिया। बोली—मेरी जिस जायदाद को बड़े भैया तुम्हारी सहायता से अपने दखल में करना चाहते हैं वह मेरी खास है—उसमें पन्द्रह आने मेरा हिस्सा है, और एक आना तुम लोगों का। वही जायदाद मैं तुम्हें दे जाना चाहती हूँ।

रमेश फिर गरम हो उठा। बोला—तुम ढरो नहीं। मैंने चोरी-जालसाजी करने में पहले भी किसी की सहायता नहीं की और अब भी न करूँगा। और, जो तुम वह जायदाद दान करना चाहती हो तो उसके लिए बहुत लोग मौजूद हैं। मैं दान नहीं लेता।

पहले होता तो रमा इसके उत्तर में फ़ौरन् कह बैठती—“मुखर्जी-वंश का दान लेने से घोषाल-वंश का अपमान नहीं होता;” लेकिन आज यह बात उसके मुँह से नहीं निकली ।

उसने विनीत भाव से कहा—रमेश दादा, मैं जानती हूँ कि तुम चोरी या बेईमानी करने में किसी की सहायता नहीं करोगे । और मैं यह भी जानती हूँ कि वह जायदाद लेने पर भी तुम अपने लिए न लोगे; लेकिन बात यह नहीं है—मैं दान नहीं कर रही हूँ । अपराध करने से उसका दण्ड होता है । मैंने जितने अपराध किये हैं, इसे उन्हीं का जुर्माना समझकर क्यों न ले लो !

रमेश ने दमभर चुप रहकर पूछा—तुम्हारा दूसरा अनुरोध क्या है ?

रमा—मैं अपने यतीन को तुम्हें सौंपती हूँ । उसे अपने ही जैसा ‘मनुष्य’ बनाओ जिसमें बड़ा होने पर वह तुम्हारे ही समान हँसते-हँसते स्वार्थत्याग कर सके ।

रमेश के चित्त की सारी कठोरता दूर हो गई ।

रमा ने आँचल से आँसू पोंछकर कहा—यद्यपि यह कुछ मैं अपनी आँखों न देख जा सकूँगी, किन्तु मुझे निश्चय है कि यतीन के शरीर में उसके पूर्वपुरुषों का रक्त है । त्याग करने की शक्ति उसके हाड़-मांस में भिदी हुई है, शिक्षा देने से शायद वह एक दिन तुम्हारे ही समान सिर ऊँचा करके खड़ा हो सकेगा ।

रमेश ने फ़ौरन् इसका कुछ उत्तर नहीं दिया । देर तक चुप रहने के बाद उसने मुँह फिराकर कहा—देखो, इन भगड़ों में मुझे अब न घसीटो । बहुत कष्ट सहने के बाद मैं थोड़ी सी प्रकाश की ज्योति जला सका हूँ, इसी से डर लगता है कि कहीं तनिक से भोंके में वह बुझ न जाय ।

रमा ने कहा—अब कुछ डर नहीं है रमेश दादा, तुम्हारी यह रेशनी अब बुझने की नहीं । काकी कहती थीं कि तुमने दूर से आकर बहुत ऊँचे पर बैठकर काम करना चाहा था, इसी से तुम्हें इतनी रुकावटें हुई; तुम्हारे काम में इतने विघ्न हुए । अब हम लोगों ने अपनी करतूतों

के बोझ से तुम्हें नीचे उतारकर ठीक जगह पर पहुँचा दिया है। तुम अब हम लोगों के बीच में आकर खड़े हुए हो, इसलिए डरते हो; पहले होता तो इस आशङ्का को तुम्हारे मन में स्थान न मिलता। उस समय तुम “देहाती समाज” के बाहर थे; पर आज उसी के एक व्यक्ति हो गये हो। इसी से अब तुम्हारा यह प्रकाश धुँधला न होगा, बुझेगा नहीं। यह तो प्रतिदिन उज्ज्वल से उज्ज्वल होता जायगा।

एकाएक काकी के नाम का उल्लेख सुनकर रमेश उद्दीप्त हो उठा। बोला—तुम ठीक जानती हो रमा, मेरे इस ज्ञानदीपक की ज्योति अब तो न बुझेगी ?

रमा ने दृढ़ स्वर से कहा—ठीक जानती हूँ। जो सब कुछ जानती हैं उन्हीं काकी का यह वचन है। यह काम तुम्हारा ही है। मेरे यतीन को अपने हाथ में लेकर, मेरे सब अपराधों को क्षमा करो और आज यह आशीर्वाद देकर मुझे बिदा करो रमेश दादा कि मैं निश्चिन्त होकर अपने स्वामी के पास पहुँच सकूँ।

जिसके भीतर बिजली छिपी हो उस मेघ की तरह रमेश का हृदय भीतर ही भीतर क्षण-क्षण भर पर चमकने लगा; किन्तु वह सिर झुकाये चुपचाप स्तब्ध होकर बैठा रहा।

रमा ने कहा—मेरी एक बात और तुम्हें माननी होगी। बोलो, मानोगे ?

रमेश ने कोमल स्वर से पूछा—क्या ?

रमा ने कहा—मेरी चर्चा उठाकर किसी दिन बड़े भैया के साथ झगड़ा न करना।

रमेश इसका कुछ मतलब न समझ सका। उसने पूछा—इसके मानी ?

रमा ने कहा—इसके मानी अगर कभी सुनो तो केवल यही याद करना कि मैं कैसे बिना चीं-चपड़ किये सब सहती चली गई हूँ, मैंने किसी बात का प्रतिवाद नहीं किया है। एक दिन जब असह्य जान पड़ा था तब काकी ने आकर कहा था कि ‘बेटी, मिथ्या को बहुत मथने से उसकी आयु और भी बढ़ जाती है। और, अपनी असहिष्णुता के द्वारा मिथ्या की आयु को बढ़ाने के बराबर पाप बहुत थोड़े होंगे।’ उनके इसी

उपदेश को स्मरण रखकर मैं सारे दुःखों और दुर्भाग्य की उपेक्षा कर सकी हूँ। इसे तुम भी किसी दिन न भूलना रमेश दादा !

रमेश चुपचाप रमा के मुख को ताकने लगा ।

रमा ने क्षण भर बाद फिर कहा—मुझे तुम आज क्षमा नहीं कर सकते, यह सोचकर मन में दुखी न होओ रमेश दादा । मुझे विश्वास है कि आज जो कठिन जान पड़ रहा है वही एक दिन सरल हो जायगा । उस दिन मेरे सब अपराधों को तुम सहज ही क्षमा कर दोगे, यह जानकर मेरे मन में अब तनिक भी क्लेश नहीं है । कल मैं जा रही हूँ ।

रमेश ने विस्मित होकर पूछा—कल कहाँ जाओगी ?

रमा—काकी जहाँ ले जायँगी वहीं जाऊँगी ।

रमेश—लेकिन सुनता हूँ, वे तो अब लौटकर न आवेंगी ।

“मैं भी न आऊँगी । मैं तुम लोगों से जन्म भर के लिए बिदा हो रही हूँ ।” धीरे-धीरे यह कहकर रमा ने झुककर, पृथ्वी में माथा टेककर, रमेश को प्रणाम किया ।

रमेश ने क्षणभर सोचकर एक लम्बी साँस छोड़ी । फिर खड़ा होकर बोला—अच्छा जाओ । लेकिन बिदा क्यों माँग रही हो, यह भी क्या मैं न जान सकूँगा ?

रमा चुप हो रही ।

रमेश ने फिर कहा—तुम अपनी सब बातें क्यों मुझसे छिपाकर चली जा रही हो यह तुम्हीं जानो । किन्तु मन-वाणी-काया से मैं भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि वे मुझे बल दें जिससे मैं तुम्हें हृदय से क्षमा कर सकूँ । तुमको क्षमा न कर सकने से मुझे जैसी कुछ व्यथा हो रही है, वह अन्तर्यामी ही जानते हैं ।

रमा की आँखों से भर-भर करके आँसू गिरने लगे; किन्तु उस अत्यन्त धीमे उजेले में रमेश यह देख न सका ।

रमा ने चुपचाप दूर से फिर रमेश को एक बार प्रणाम किया । इसके बाद ही रमेश वहाँ से चला गया ।

राह में चलते-चलते उसे जान पड़ा कि उसका भविष्य, उसका सारा काम-काज का उत्साह मानों पलभर में ही इसी चाँदनी की तरह अस्पष्ट छायामय हो गया है।

२०

दूसरे दिन सबेरे के समय रमेश जब काकी के घर पहुँचा तब विश्वेश्वरी पालकी में जा बैठी थीं।

पालकी के दरवाज़े के पास मुँह ले जाकर रमेश ने अश्रुगद्गद स्वर से पूछा—काकी, किस अपराध के लिए हम लोगों को इतनी जल्दी छोड़कर चली जा रही हो ?

विश्वेश्वरी ने दाहना हाथ बढ़ाकर रमेश के सिर पर रखकर कहा—अपराध की बात कही जाय तो कहने से वह समाप्त नहीं की जा सकेगी भैया ! उसे रहने दो। इसके बाद कहा—अगर मैं यहाँ मरूँगी रमेश, तो बेनी मेरी मुखाग्नि करेगा। ऐसा होने से किसी तरह मेरी मुक्ति न होगी भैया ! यह जन्म तो जलते ही जलते बीता। कहीं परलोक में भी इसी तरह जलते-भुनते रहना न पड़े, इसी डर से मैं भागी जा रही हूँ रमेश।

रमेश वज्राहत की तरह हक्का-बक्का हो रहा। आज इसी एक बात से काकी के हृदय के भीतर की माता की व्यथा रमेश ने जैसे देख ली, वैसे और किसी दिन नहीं देखी थी।

तनिक स्थिर रहकर रमेश ने पूछा—रमा क्यों जा रही है काकी !

विश्वेश्वरी ने आँसुओं के एक प्रबल उच्छ्वास को मानों दवाने की चेष्टा की। फिर वे धीमा स्वर करके बोलीं—संसार में उसके लिए स्थान नहीं है भैया ! इसी से उसे भगवान् के श्रीचरणों के समीप लिये जा रही हूँ। मालूम नहीं, वहाँ पहुँचकर वह जियेगी या नहीं; किन्तु यदि जियेगी तो मैं उससे जीवन भर इसी अत्यन्त कठिन समस्या को हल करने को कहूँगी कि भगवान् ने इतना रूप, इतने गुण और इतना उदार हृदय देकर संसार में उसे भेजा ही क्यों था; और यदि भेजा ही था तो बिना दोष के यह दुःख

का बोझा सिर पर लादकर फिर संसार के बाहर क्यों ढकेल दिया ? यह अर्थ-पूर्ण शुभ अभिप्राय उन्हीं का है या यह केवल समाज की खामखयाली भर है !—अरे रमेश, रमा के समान दुखिया शायद इस पृथ्वी पर नहीं है !

यों कहते-कहते काकी का गला भर आया; वे कुछ न कह सकीं ।

विश्वेश्वरी को इस तरह की व्याकुलता प्रकट करते कभी किसी ने नहीं देखा । रमेश सन्नाटे में आकर बैठा रहा ।

विश्वेश्वरी ने थोड़ी देर बाद उसी सिलसिले में फिर कहा—किन्तु तुझे मैं यह आज्ञा दिये जा रही हूँ रमेश, कि तू रमा को कुछ का कुछ न समझ बैठना । जाते समय मैं किसी की कोई शिकायत नहीं कर जाना चाहती, केवल मेरी इस एक बात पर तू भूलकर भी अविश्वास न करना कि रमा से बढ़कर तेरा मङ्गल चाहनेवाला कोई नहीं है ।

रमेश ने कहा—किन्तु—काकी—

काकी ने उसे बीच में ही रोककर कहा—इसमें कोई किन्तु-परन्तु नहीं है रमेश । तूने रमा के सम्बन्ध में जो कुछ सुना है, सब भूठ है; जो जाना है, सब ग़लत है । किन्तु मैं चाहती हूँ कि इस अभियोग की यहीं पर इतिश्री हो जाय । रमा का तुझसे यही अन्तिम अनुरोध है कि तेरा काम—सम्पूर्ण अन्याय, समस्त ईर्ष्या-द्वेष को बिलकुल तुच्छ करके—सदा इसी तरह दृढ़ता के साथ होता रहे । इसी के लिए मुँह बन्द कर वह सब अत्याचार, अन्याय और कष्ट सहती गई है । प्राण देने के लिए तैयार हो बैठी है, किन्तु मुँह से उसने एक शब्द तक नहीं निकाला ।

गत रात्रि को रमा ने जो बातें की थीं, उनमें की भी दो-एक बातें रमेश को याद हो आईं । दुर्जय फ़लाई का वेग उसके ओठों तक ठिल आया ।

रमेश ने चटपट सिर झुकाकर, सारी शक्ति लगाकर, यह कह डाला—उससे कह देना काकी, यही होगा ।

अब हाथ बढ़ाकर किसी तरह काकी के पैर छूकर रमेश, एक तरह से दौड़ता हुआ, वहाँ से चल पड़ा ।

